श्रमनीति

श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा

—भारतीय मजदूर संघ

प्रस्तावना

भारतीय मजदूर संघ द्वारा राष्ट्रीय श्रम आयोग को प्रस्तुत किये गये 'Labour Policy' अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है।

हिन्दी में इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग-अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपातकालीन स्थिति में जिला कारागार कानपुर की बन्दी अवधि के अन्तर्गत हमारे परम मित्र आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से इस अध्याय का अनुवाद किया गया है।

भारतीय मजदूर संघ की ओर से मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

—रामनरेश सिंह

अध्याय—१४ भाग ३

श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा

पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः। ऋग्वेद ३।७५।१४

(मनुष्य को हर प्रकार से मनुष्य की सुरक्षा करनी चाहिए)

आधार—परिवार

आज जब हम श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा के कई पक्षों पर दृष्टि-पात करते हैं और उस उद्देश्य व मन्तव्य की खोज करते हैं, जिसने उद्योग को खपत की वस्तुओं के ऊपर खर्च करने की प्रेरणा दी है जो कि उत्पादन और वितरण से सम्बन्धित गतिविधियों से भिन्न है तो हम पाते हैं कि मुख्यतः हमारी खोज व्यर्थ है। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि व्यापक मानववादी दृष्टिकोण अथवा पितातुल्य प्रबन्ध के विचारों से प्रेरित होने के बजाय कोई और उद्देश्य अथवा हेतु काम कर रहा है। ऐसी टिप्पणी करने का हमें कोई अवसर पहले नहीं मिला, जब हम विशेष सुविधाओं के विषय को १०वें अध्याय में प्रस्तुत कर रहे थे। उस टिप्पणी में इस विषय को कोई सबल वैचारिक आधार नहीं दिया गया। उस तर्क वितर्क का निष्कर्ष हमने इस सुझाव द्वारा प्रस्तुत किया था कि जिन्हें विशेष सुविधायें कहा जाता है, उसको सामुदायिक सेवाओं के नाम से कहा जाय और इसके बजट और प्रबन्ध को औद्योगिक परिवार के आधीन किया जाय किसी एक उद्योग में काम करने वाले सभी व्यक्तियों को मिलाकर औद्योगिक परिवार बनता है इस प्रकार स्वायत्त-शासी, स्व निर्धारित श्रमिक वर्ग के समुदायों के बनाने का रास्ता खड़ा होगा, जो एक आदर्श सामाजिक ढांचे का भाग होगा। अब समय आ गया है जब कि इसके पहले हम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित नियंत्रित करने वाले विचारों की रूपरेखा प्रगट करें, सामाजिक कल्याण के आधारभूत विचारों के बारे में कुछ अधिक ध्यान दें। यदि वेतन अथवा औद्योगिक सम्बन्धों से सम्बन्धित (थ्योरीज) को अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञान के सामूहिक विषय के रूप में सोचा गया और तीसरा विषय "राजनीति" को इनसे जोड़ा गया तो ये ३ विषय त्रिभुज के कोने के रूप में माने जा सकते हैं। कल्याण और सामाजिक सुरक्षा का विषय सामाजिक ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र

को आच्छादित करना है और मनुष्य मात्र की आधारभूत आवश्यकताओं से सम्बन्धित होना शुरू हो जाता है। यह वह क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत समुदाय के कार्यकलाप अपनी आय की खपत को व्यवस्थित करने के लिये नियन्त्रित कदम उठाता है, न कि जैसा व्यक्ति चाहता है बल्कि व्यक्ति जैसा सामाजिक व्यवस्था के उद्देश्य निर्धारित होते हैं। चूँकि हमने सामाजिक व्यवस्था में निहित विषयों को विस्तृत रूप से प्रगट नहीं किया है वरन् हमारी कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं का केवल संक्षेप में वर्णन किया गया है और यह उस विषय के संदर्भ में बहुत कम हैं, जिसमें कि काफी कुछ जोड़ा जा सकता है ताकि विदेशी संदर्भ में इसका कुछ अर्थ हो सके।

मानवीय कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की सही आवश्यकताओं के संदर्भ में अथवा सामाजिक व्यवस्था के सयंत्र हेतु मानव विकास के संदर्भ में भी सर्वप्रथम यह अनुभव किया जाता है कि विदेशी तकनीकी को अविवेकी ढंग से अपनाना और केवल उसी पर छोड़ देना–मानवीय उत्थान पर सबसे गम्भीर हमला हो सकता है। इसके एक मात्र आर्थिक पक्षों ने पहले से ही आधुनिक महानगरों (मैट्रोपोलिटन) को बनाया है और इससे सम्बन्धित रोगग्रस्त सभ्यता, गन्दी बस्तियों तथा रहने व चलने हेतु स्थान की कमी, पानी की कमी, व्यक्ति के अमानवीयकरण और अपने स्वयं को ही भूले हुये व्यक्तित्व के समूह का निर्माण किया है। यह व्यक्ति को उसके सामाजिक मूल स्थान से उखाड़कर आरक्षित बनाता है और तत्पश्चात उसे जन-जीवन की होड़ के विरुद्ध सुरक्षा खोजने के लिये वाध्य करता है। यह व्यक्ति के स्वास्थ्य को नष्ट करता है, धुयें, तनाव, थकान व अनियमितताओं के कारण; 'शीघ्रता, चिन्ता और मौत' की संस्कृति के कारण; स्वास्थ्य और व्यक्तित्व के विनाश व पारिवारिक जीवन की कमी के कारण; नीरसता व अलगाव, नियमों और नियंत्रणों की शृंखला और यांत्रिकीय निर्जीव दिनचर्या के कारण उसकी मनोभूमिका नष्ट हो रही है। उसने उत्पादक प्रक्रियाओं को सामाजिक गतिविधियों का प्रभावी केन्द्र बना दिया है और उत्पादन माध्यम के लिये व्यक्तियों की नियुक्ति कर उनकी सेवाओं का अत्यधिक उपयोग किया जा रहा है। यह एक नग्न तथ्य है–एक व्यक्ति जैसा कि एक सक्रिय श्रमिक अपने आपको देखता है कि वह उस खपत की एक इकाई है, जिसके लिये वह परिश्रम करता है और जिसे अभी भी परिवार के रूप में देखा जाता है, किन्तु इस दृष्टिकोण को भी खो दिया जाता है और औद्योगिक अधिकारियों द्वारा बड़ी हिचकिचाहट और द्विविधा के अन्तर्गत इस भाव को स्वीकार किया जाता है। हम केवल एक मात्र ऐसे विषय का उल्लेख कर रहे हैं, जिसके अन्तर्गत यंत्र और उसके उपकरण ने हमारी दृष्टि को ही अंधा बना दिया है। यदि हम अपने लोगों के उत्थान के लिये कोई भी गम्भीर चिन्ता दिखाना चाहते हैं तो हमको इस तथ्य को आधारभूत रूप में स्वीकार करनी चाहिये कि हमने यंत्र को

अंधे होकर ईश्वर तुल्य बनाकर और सभी प्रकार के सुख व प्रगति को देने वाला सर्वशक्तिमान माना है। यही हमारी सामाजिक अव्यवस्था की जड़ हैं, जिसका प्रकटीकरण इन रूपों में है–अनुपस्थिति, अनुशासनहीनता, हड़ताल, कानून उलंघन; हिन्सा, मान्यताओं का नष्ट होना, गुण्डागर्दी और व्यापक हुल्लड़बाजी। इसका यह अर्थ नहीं कि हम यांत्रिकीकरण के विरुद्ध हैं अथवा यांत्रिकीकरण न होनी चाहिये पर हम इसके अविवेकपूर्ण उपयोग के विरुद्ध हैं। जिस समय एक मशीन अथवा प्लान्ट बैठायी जाती है, समाज की बचत को एक प्रोजेक्ट के लिये लगाया जाता है (क्योंकि सभी प्रकार की बचत अन्ततोगत्वा सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही सम्भव होती है), जो एक सामूहिक प्रयत्नों के द्वारा ही चलाई जा सकती है। परन्तु यदि यह प्रोजेक्ट उस सामूहिकता की सही आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता, तो यह माना जायगा कि योजना सामाजिक दृष्टि से दोषपूर्ण बनी हुई हैं। इस प्रकार सार्वजनिक कीमत का धन अत्यधिक मात्रा में लगाकर एक ईमानदार समाजवाद नहीं बनाया जा सकता। इसी प्रकार से मशीन व्यक्ति का मालिक बन गई है, परिणामस्वरूप मानव के सुख को नष्ट कर दिया है तथा स्वाभाविक उत्कर्ष में इसने बाधा उत्पन्न कर दी है। जब तक जड़ मूल से इस बीमारी को ठीक नहीं किया जाता तब तक कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना केवल मात्र पैबन्द लगाने समान रहेगी। मशीनीकरण की सभ्यता व्यक्ति को आग्रह पूर्वक बताता है कि वह अपने घर को भूल जाय। किन्तु इसके बदले में उसे परियोजना अथवा मशीन पर घरेलू वातावरण को वह अनुभव करने नहीं देता और न ही यह देखने की चिन्ता करता है कि उसके पहले वाले घर (वास्तविक घर) की क्या स्थिति है! आधुनिक कारखाने के श्रमिक अथवा कार्यालयों के क्लर्क को इतनी शक्ति भी नहीं रहती कि वे अपने बाल-बच्चों से घुल मिल सकें तथा उनके उत्थान और शिक्षा की देख-रेख कर सकें। उनका कोई सच्चा मित्र और सच्चा पड़ोसी भी नहीं होता फिर जीवन की कौन सी गरिमा उसको शक्ति प्रदान कर सकती है और उसका संतुलन ठीक बनाये रख सकती है? उसको यह बताया जाता है कि वह भाग्यशाली है क्योंकि उसे काम करने के स्थान से ७०–८० किलोमीटर दूर किसी स्थान पर एक कमरे वाला मकान मिल गया है। यदि उसके पत्नी व बच्चे अस्वस्थ हैं, तो यह निश्चित नहीं कि वह बीमारों की आवश्यकतानुसार देख-रेख कर सकेगा। ऐसा कर सकने के पहले उसे अपने अधिकारी (बास) की कृपा और दया के लिये प्रार्थना करना पड़ेगा। नियोजक की दृष्टि में उसके माता पिता अथवा अन्य सम्बन्धी–कोई भी नहीं हैं। कुछ मामलों में तो नियोजकों ने कर्मचारियों को दिये गये कोठरी में उनके माता पिता व अन्य सम्बन्धियों को भी ठहरने की अनुमति नहीं दी है। आमतौर पर उन्हें चिकित्सा और यातायात सुविधाओं के लिये नहीं गिना जाता। इसी भांति कर्मचारियों की मृत्यु के तुरन्त पश्चात उसकी

विधवा पत्नी और बच्चों को निराश्रित व असहाय बना दिया जाता है। उन्हें दूसरे लोगों के साथ आड़ लेने के लिये बाध्य किया जाता है, जबकि वे अपने साथ रहने की एक दिन तक की अनुमति देने में भी असमर्थ रहते हैं। क्योंकि अधिकांश कालोनीज में कर्मचारियों को अपने सम्बन्धियों मित्रों व अतिथियों को टिकाने की भी अनुमति नहीं हैं। अपने पूरे कार्यकाल की अवधि में एक कर्मचारी अपने घर पर नहीं रह पाता। कर्मचारी को घर से कार्य स्थल की दूरी तय करके पहुँचने की जिम्मेवारी उद्योग की नहीं है। उद्योग अपनी प्राथमिक जिम्मेवारी नहीं मानता कि अपने कर्मचारियों की सामाजिक व सामूहिक जीवन के प्रति उसे कुछ करना भी है। यदि वह श्रमिक के सामूहिक जीवन के लिये कुछ करता है तो उसकी श्रम कल्याण के रूप में प्रशंसा की जाती है। यदि वह श्रमिक को रुग्णावस्था सुविधा अथवा भविष्यनिधि या पेन्शन का वितरण करता है तो यह माना जाता है कि कर्मचारी की वृद्धावस्था अथवा रूग्णावस्था के लिये अपनी जिम्मेवारी उसने पूरी कर दी है। उसके सामने यह कोई प्रश्न नहीं है कि यह राशि उस अस्वस्थ व वृद्ध के लिये कितने वास्तविक मूल्य की है, जबकि कर्मचारी को उद्योग की सेवा के लिये अपना सम्पूर्ण कार्य जीवन अर्पण करना पड़ता है। वास्तविक रूप से उसे अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं तथा जीवन के लिये उद्योग पर निर्भर रहना पड़ता है। आधुनिक उद्योग ने अपने प्रारम्भिक काल से ही जीवन मूल्यों में ऐसा परिवर्तन लाया है, जो मनुष्य के रहन सहन व उत्थान के लिये आवश्यक माना जाता है, और वह एक ही मूल्य है, जिसकी वेदी पर दबाकर उसे बलि चढ़ा दिया जाता है। वह मूल्य है–'धन'। उस धन के के लिये श्रमिक से निम्न बातों को करने के लिये कहा जाता है–पारिवारिक जीवन की आवश्यकता को छोड़ने के लिये, अपनी भावनाओं और सम्बन्धियों को छोड़ने के लिये, अपने व्यक्तित्व को भुलाने के लिये और पहिये व मशीन के दांत बनने की स्वीकृति देने के लिये, शहरी कोठरियों में रहकर अपने आपको दम घुटाने के लिये, गाड़ी और अन्य सवारियों व बसों की भीड़ में दौड़ने के लिये, शहरी खेलों से सबक सीखने हेतु अपने बच्चों को बुलाने के लिये, सही मित्रता के स्थान पर केवल क्लब की संस्कृति को अपनाने के लिये और दिशाहीन सभ्यता में बने रहने के लिये आदि। श्रमिकों को उक्त बातें इसलिये करनी पड़ती है, क्योंकि जो आर्थिक लक्ष्य को नियंत्रित करते हैं, वे प्रगति के रास्ते के लिये मशीनीकरण की शक्ति पर ही पूर्ण निर्भरता रखते हैं।

हमारी यह आलोचना एक विशेष कल्याणकारी कार्य के लिये है, उदाहरणार्थ आवास व्यवस्था। मनुष्य की एक प्राथमिक भौतिकीय आवश्यकता तो उसके पनाह लेने की रहती है। यदि उसका मकान उसके कार्य स्थल के निकट है तो वह समय

व धन-दोनो में उपयुक्त बचत कर सकता है। यदि उसे यह अनुभव कराया जा सके कि यह मकान उसका अपना वास्तविक घर है, तो उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इन सभी बातों को आज अच्छी प्रकार से मान्यता है और उसके लिये कोई सबूत नहीं चाहिये। परन्तु जिस समय उद्योग के सम्मुख इस गम्भीर सुझाव को प्रस्तुत किया जाता है तो वे इस विषय से दूर भागते हुये दिखाई देते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि उद्योगों ने कार्यस्थल को चुनने में मानव जीवन के इस पक्ष को प्राथमिक स्थान नहीं दिया है। वे सम्पत्ति के ही तथ्यों के परिणाम को ध्यान में रखकर यह तय करते हैं कि उन्हें किस स्थान पर सर्वाधिक लाभदायक रोजगार प्राप्त होगा। यदि हम उद्योग को मनुष्य जीवन और समाज का सेवक बनाना चाहते हैं, तो हमें हर एक श्रमिक के लिये एक उचित घर दिलाने के लिये दबाव डालना चाहिये इसके पहले कि उद्योग को काम करने की स्वीकृति दिया जाय। विषय यहां ही समाप्त नहीं होता, बल्कि प्रारम्भ होता है। उद्योग और राष्ट्र को स्वस्थ बनाये रखने के लिये नियोजक को यह देखना चाहिये कि श्रमिकों को उस स्थिति में रखे, जिसमें कि वे पूर्ण समाधान प्राप्त कर सकें, जितना कि वे व्यक्तिगत रूप में सक्षम हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नियोजक को जीवन की सही मान्यताओं के बारे में कुछ प्राथमिक दृष्टिकोण रखना चाहिये। पुराने दिनों में भी राजा जनता का एक पितातुल्य संरक्षक था। 'रघुवंश' राजा के बारे में इस प्रकार लिखता है –

"सं पिता पितरः तेषां केवलं जन्महेतवः।"

अब हमें इस पुरातन विचार से कोसों आगे जाना चाहिये, परन्तु हम अपने पूर्वजों के मुकाबले में वास्तव में पीछे हैं। हमारी कल्याणकारी गतिविधियों के प्रभाव का भी अध्ययन होना चाहिये। किसी नियोजक के लिये अपने कर्मचारियों और उनके बच्चों के लिये एक पुस्तकालय खोल देना ही पर्याप्त नहीं है और तत्पश्चात उपन्यास पढ़ने वाली आदतों से ही समाधान कर लें वह यदि क्लब की इमारत और नाच गाने के हाल बनाने के लिये उत्साहित है और एक मन्दिर अथवा चर्च बनाने के प्रति उसे चिढ़ है, जो कि उसके औद्योगिक आवास कार्यक्रम के भाग के रूप में है, तब यह अवश्यमेव कहना चाहिये कि उसने सच्चे उत्थान व कल्याण को बिलकुल ही नहीं समझा है एक औद्योगिक संस्थान का यह अर्थ नहीं है कि लगाई गयी मशीनें एक व्यापक श्रमिक वर्ग की कालोनीज से घिरी हुई हों, जो एक औद्योगिक साम्राज्य के रूप में नजर आयें वरन् एक व्यापक विश्व और परिवार में एक छोटा विश्व और परिवार के रूप में उद्योग का व्योहार होना अपेक्षित है। इसका अर्थ यह है कि यह एक पहलू में राष्ट्र है और दूसरे पहलू में उसमें रहने वाले परिवारों का समूह है। परिवार केवल मात्र स्थूल शरीर से नहीं है, वरन् उसके पास पारिवारिक मन और पारिवारिक आत्मा भी है। यह उस मनोभूमिका वाले

वृत्ताकार क्षेत्र की जो विभिन्न इकाइयों के नमूने पर बनती है-नहीं है, जिसके अन्तर्गत एक वृत उद्योग अथवा औद्योगिक परिवार के नाम से कहा जाय जो स्वतंत्र रूप से सोचे और योजना बनावे बिना किसी दूसरे वृत्त के लगाव से। यह दूसरा वृत्त वह है, जिसे व्यक्तिगत पारिवारिक जीवन अथवा राष्ट्रीय पारिवारिक जीवन कहा जाता है। यदि प्राथमिक पारिवारिक जीवन की यह आवश्यकता है कि परिवार में अथवा घर में व्यक्ति का जीवन अच्छे संस्कारों से भरा हो, तब औद्योगिक जीवन की गतिविधियों को पारिवारिक जीवन की इन आवश्यकताओं से किसी प्रकार सम्बन्धित किये बिना योजना नहीं बनानी चाहिये और न करनी ही चाहिये। बल्कि इसे जीव प्राणी के समान औद्योगिक सम्बन्धों को पारिवारिक जीवन के समान खड़ा होना चाहिये। जैसे एक पेड़ उसके तने, पत्तियां, फूल और फल-सब एक बीज से उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार जीवन के इस विचार के द्वारा ही जीवन के मूल्य, जैसे निष्ठा, सच्चाई, श्रम को आराधना मानने की वृत्ति, भक्ति, विश्वास, संतुलन, कर्तव्यनिष्ठा, उपयोगिता, सिद्धान्तवादिता आदि जो परिवार में पैदा होते हैं, उसे औद्योगिक और राष्ट्रीय जीवन में भी रोपा जा सकता है। भारतीय संस्कृति ने मानव के अन्तःकरण के विकास को हमेशा मनके अखण्ड मण्डलाकार रूप के विकास के समान माना है। यह जीवन को विभिन्न भागों में नहीं बाँटता है, जिसमें कि परिवार, उद्योग और राष्ट्र और दूसरी भिन्न--भिन्न संस्थायें जैसे–पेन्शनर्स कालोनी के स्वतंत्र रूप से प्रबन्ध किये जाय। इस प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्था के अपनाने के लिये विदेशी विचार हमें उपदेश देने के लिये इच्छुक हैं। साथ ही जीवन के लिये भारतीय विचार ने अपने अर्थ और काम के ही प्रारम्भिक दो पुरुषार्थों तक नहीं सोचा है। उसके अनुसार सामाजिक जीवन के इस प्रकार के वर्गीकरण द्वारा अथवा पदार्थ और धन की पद्धतियों द्वारा मानव का समाधान नहीं किया जा सकता। उपनिषदों के अनुसार ठीक ही कहा गया है कि मनुष्य का प्राथमिक स्वरूप मन है, मनोमय प्राणशरीर नेता। यह बहुत से विदेशी मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि पश्चिम में मशीनीकरण की सभ्यता बहुत सी मानसिक अस्थिरताओं का कारण बनी हुयी है। एक शान्त मन और आन्तरिक सुख जो एक शिष्ट परिवार में स्नेह के आधार पर फैलता है, वह पश्चिम में अधिकाधिक रूप से कठिन प्रतीत हो रही है। विश्व की इन परिस्थितियों में हमारी बुद्धिमत्ता पर यह बहुत खराब टिप्पणी होगी यदि हम अपने विचारों को औद्योगिक सभ्यता के इस राक्षस द्वारा पर्दा डालने दें और अपने मन तथा मस्तिष्क को रसातल की ओर जाने दें। यदि हम विदेशी तकनीकी को बिना किसी विवेक के अपनी भूमि पर खड़ा करते जांय अथवा भारतीय रहन-सहन के स्थान पर सीमेन्ट कांकरीट की इमारतों को पसन्द करें तो ऐसा होना अवश्यम्भावी है। वह संस्कार जो मां घर में पैदा करती है, उसका टेलीवीजन कार्यक्रम द्वारा नकल नहीं

किया जा सकता अथवा एक क्लब हाउस में उपस्थित होने से भी उसका विकल्प नहीं हो सकता। क्या मां को अपने स्थान से हटा कर हमें मशीन को लाना चाहिये अथवा उन हाथों द्वारा जो उसे पूजते हैं, चलाया जाना चाहिये यह आधार मूत प्रश्न है। इस हेतु कि हम मशीन को उचित स्थान में रख सकें, जिससे कि वह हमारे जीवन की ठीक सेवा कर सके-हमारे लिये आवश्यक है कि हम सच्चे अर्थों में जीने की प्रक्रिया को समझें। हम बड़े आग्रह पूर्वक कह रहे हैं कि अगर हम अपने लोगों का उत्थान चाहते हैं, तो हमें यह अनुभूति करनी चाहिये कि यह तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक हम मशीन और औद्योगीकरण को यथास्थिति रखने के लिये तैयार हैं और तकनीकी को हम अपने जीवन और रहन-सहन के मूल्यों के अनुसार अपनी शर्तों पर ही नहीं अपनाते। मनुष्य मशीन नहीं है, बल्कि मनुष्य मात्र ही सभी योजनाओं का केन्द्र विन्दु है।

भारतीय संस्कृति की सामूहिक जीवन प्रणाली को भारतीय संस्कृति की उस आधार भूत विचार के छोड़ने पर कभी भी नहीं समझा जा सकता, जिसके अन्तर्गत आत्मा की अनुभूति और मनुष्य जीवन को दैवी जीवन में वदलने से सम्बन्धित है। इस याचिका में भारतीय अस्तित्व के इस केन्द्रीभूत तत्व को विस्तार पूर्वक लिखना आवश्यक नहीं है। ऋषि, महर्षियों व गुरुजनों द्वारा इसका आदिकाल से विस्तृत विवेचन किया गया है। और यदि कोई इसके बारे में कुछ नहीं जानता, तो उसे वास्तविक रूप में भारतीय नहीं माना जा सकता, व उसे आर्य नहीं माना जा सकता बल्कि अनार्य माना जायगा। आत्मानुभूति की इसी पद्धति को धर्म कहते हैं(वास्तव में हिन्दुस्थान में यह सर्वविदित है और यह वह शब्द है, जिसका अंग्रेजी में समान शब्द नहीं मिलता)धर्म शब्द आत्मा और जीवन का सन्धि सदृश है, जो मानव उद्देश्यों व चरित्र से सम्बन्धित उक्त दोनो बातों को प्रथम और समूचे रूप से प्रस्तुत करता है। अर्थात, आध्यात्मिक आस्तित्व के रास्ते के ठीक सम्बन्धों में दिलचस्पी और सुख प्राप्ति की पद्धति की इच्छा से सम्बन्धित है। हिन्दुस्थान में यह अच्छी प्रकार से विदित है कि जन समूह एक व्यापक रूप में मनुष्यों का एकत्रीकरण है, जिसे समष्टि कहते हैं, जो सामूहिक रूप में या एक विशेष अथवा सामूहिक आत्मा, मन और शरीर के साथ एक जीव प्राणी के समान व्यवहार करता है। 'धर्म' इस घनीभूत सत्य की अनुभूति व हमारे आस्तित्व से सम्बन्धित न अनुभूति की गयी आध्यात्मिक क्षमताओं पर आधारित मनुष्य के सामूहिक जीवन के सम्बन्ध में उस के स्तर और गतिविधियों को ढ़ूढ़ता है और जन प्राणी के जीवन को इस प्रकार आत्मलीन करता है कि मानव में स्व के इस विराट स्वरूप की लीला को उत्पन्न करता है तथा विराट चेतना का सामूहिक आत्मा और शरीर जिसे सार्वभौम आत्मा कहते हैं, बनाना है। यही समाज पुरुष है, संहस्त्रशीर्षा, सहस्त्राक्ष भगवान है। इसको ठीक-ठीक पूजा करने के लिये

यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है हम अपनी सारी सम्पत्ति, बुद्धिमत्ता प्रयत्न तथा ऐश्वर्य को इसके चरणों में समर्पित करें, वह चरण-पांव अर्थात् जिसे हम श्रमिक कहते हैं। और इस 'श्रमिक' को धनोत्पादन के लिये बलि न चढ़ाये वरन् इसी प्रकार से उसकी पूजा की जा सकती है, की जाती है और स्वीकार होती है। लक्ष्मी जिसे धन की देवी कहा जाता है, के लिये ठीक स्थान भगवान के चरण (श्रमिक) के पास है। इस सार्वभौम भगवान के चरणों में समर्पण के द्वारा मनुष्य के मन में 'धर्म, पैदा होता है। यह कोई प्रतिबिम्ब स्वरूप नहीं है, बल्कि वास्तविक सत्यता है। इसलिये हमारे जीवन की कल्पना के अनुसार श्रमिक द्वारा उत्पादन का महत्व नहीं है, बल्कि उसकी सही पूजा एक तथ्य है, जिसके लिये सभी प्रकार की सम्पत्ति बहते पानी के समान होना चाहिये। श्रमिक कल्याण उद्योग के लिये आकस्मिक अथवा द्वितीय विषय नहीं है, वरन् यह उसके अस्तित्व का सम्पूर्ण विषय होना चाहिये।

किस पद्धति द्वारा आम श्रमिक इस 'स्वामित्व' तक पहुंच सकता है, उस सम्बन्ध में अर्थात् वेतन, वेतन विषमता, उत्पादकता और औद्योगिक सम्बन्ध आदि के बारे में हमारी याचिका में उल्लेख किया गया है। भारतीय पद्धति की यह सर्वविदित क्रम है, जिसके अन्तर्गत इस उत्थान के क्रमों को भिन्न भिन्न नाम दिया गया है। जैसा और जब एक असली श्रमिक पहले सौदेबाज फिर शासक और अन्ततोगत्वा अपने में परिपूर्ण, स्वअनुशासित, स्वचालित गुरु बनता है। इस अध्याय में उत्थान की एक दूसरी दिशा अपनाने का हमारा प्रयत्न है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस ऊपर उठने वाले पहले क्रम के सम्बन्ध में एक समानान्तर पक्ष का अनुमान लगाते हैं, जिसके अन्तर्गत ब्रम्हाण्ड तुल्य स्वभाव अथवा भगवान के साथ समरूप होने की हम कल्पना करते हैं। इस दूसरे मार्ग की परिपूर्णता, की दिशायें हमें हमारा सामाजिक दर्शन देती हैं, जो सामाजिक उत्थान सम्बन्धी हमारे विचारों और गतिविधियों का आधार बनती हैं। यह उत्थान की वह दिशा है, जिसे मानव आत्मा अपने विश्वयापी प्रगटीकरण हेतु प्राकृतिक रूप से चुनती है। इसका सूत्र स्वतंत्रता और एकात्मकता की अनिवार्य प्रकृति है, जो स्वतंत्रता पूर्वक जीव पद्धति के समान फलती फूलती है, जैसे-जैसे आत्मा की आवश्कता बढ़ती है। व्यक्ति का परिवार से, जाति या वर्ग से, व्यवस्साय से, समूह से, ग्राम अथवा शहर से, प्रान्त से, राष्ट्र से, अन्ततोगत्वा मानवमात्र और और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से एकात्मता की इस विचार को इस पद्धति के अन्तर्गत देखा जाता है, जो विकास का एक स्वाभाविक स्वरूप व क्रम है। इस व्यवस्था के अपनाने पर हम उद्योग अथवा आधुनिक तकनीकी को यह अनुमति नहीं दे सकते कि वह व्यक्ति और पारिवारिक जीवन की आवश्यकताओं पर प्राथमिकता दे और आत्मा की प्रगति के स्वतंत्र और स्वाभाविक उत्थान को एक औपचारिक ढांचे के अन्तर्गत समायोजित करे, जैसा कि औद्योगिक सभ्यता उस पर थोपना चाहती है। ऐसा प्रतीत

होता है कि वस्तुत: उत्थान की आधारभूत सच्चाई को पश्चिमी सभ्यता ने खो दिया है। इस लिये पाश्चात्य विचार ने समाज के जीवित उत्थान की आवश्यकता से परे देखने की चेष्टा की है। पश्चिमी विचार ने जीवन उत्थान को एक यंत्रणा के रूप में देखा है, जिसे इच्छानुसार तोड़ा मरोड़ा जा सकता है और सूखी लकड़ी अथवा लोहे के समान बनाया जा सकता है, जैसा कि स्वेच्छानुसार बुद्धि बतावें। इसलिये यह सभ्यता जीवन के गुप्त रहस्यों से अपने आपको हटा लिया है और जन समुदाय की प्रेरणा शक्ति के सरल सिद्धातों पर से अपनी सत्ता को खो दिया है। परिणाम स्वरूप पूंजीवाद अथवा साम्यवाद के अन्तर्गत (क्योंकि दोनों ही पद्धतियां समान रूप से जीवन की व्यवस्था से अनभिज्ञ हैं। पद्धति और संस्था के लिए कानून और प्रशासन की बढ़ रही निर्भरता बनी हुई है। और जीवन्त समाज के स्थान पर एक यांत्रिकीय राज्य के विकास की घातक प्रवृत्ति पर वे निर्भर हैं। जीवन के स्थान पर सामूहिक जीवन के संयंत्र ने स्थान ले लिया है। इसने एक सत्ताधारी परन्तु यांत्रिकीय कृत्रिम संगठन को पैदा किया है। और स्वतन्त्र तथा जीवित जन समुदाय के शरीर में स्वयं विकसित होने वाली सामूहिक चेतना की सचाई को पूर्णरूपेण खो दिया है। जब तक इस आधारभूत गलती को ठीक नहीं किया जाता, तब तक साम्यवादी देश एक राज्य विहीन समाज में कम्यून्स (गिरोह बन्दी) के अपने आदर्श की अनुभूति भी नहीं कर सकेंगे और न ही पूंजीवादी देश अपने सदस्यों को स्वातंत्रता के अपने आशाप्रद आदर्श को ला सकेंगे। अपनी वास्तविक महत्ता के मार्ग को भूल जाने के कारण बुद्धि के द्वारा जकड़े जाने वाली गतिविधियों ने पाश्चात्य देशों को उनकी आकांक्षाओं के धोखे में डाल दिया है। जब हम पाश्चात्य के इस विशाल वैज्ञानिक और औद्योगिक सभ्यता के ताजे, स्वच्छ अथवा बिना पूर्वाग्रह के सम्पर्क में आते हैं, तब इस विशाल चक्र के अन्तर्गत बिना किसी गलती के घायल आत्मा की करुण क्रन्दन और कष्ट के कारण एक गहरी वेदना सुनाई देती है। अवकाश प्राप्त कर्मचारियों की निराशावादी आवाज पाश्चात्य सभ्यता की दु:खद घटना को प्रतिबिम्बित करती है। ध्यान रहे कि पाश्चात्य देशों ने इन अवकाश प्राप्त कर्मचारियों को निराशावादी मार्ग पर अकेले में उद्देश्यहीन ढंग से छोड़ दिया है। पश्चिमी देशों के इस करुण दृश्य को देखकर उस कवि की याद आ जाती है, जिसने कहा है—

"उसकी प्रभुसत्ता सीमित है
और कहीं भी संतोष और शान्ति का विश्वास नहीं होता
जितना भी सौन्दर्य और गहराई उसमें निहित है
उसका आभास आत्मा की मुक्तता में नहीं दिखाई देता।"

(सावित्री, खण्ड द्वितीय, सर्ग ६, पृष्ठ २२२-२३)

इस लिये सर्व प्रथम हमें यह पक्का निर्णय लेना चाहिये कि हम जनसमुदाय के जीवन की स्वाभाविक व्यवस्था के स्थान पर मशीनीकरण की अपूर्ण व्यवस्था नहीं लायेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु हम मैट्रोपोलिटन केन्द्रों को तोड़ देंगे और औद्योगिक केन्द्रों को विकेन्द्रीकरण के ढांचे के अन्तर्गत शहरों के जाल की योजना को प्रिय बनायेंगे। हम ऐसा कहेंगे कि भारत में बहुत से छोटे छोटे शहर होने चाहिये और किन्ही दो शहरों के बीच में स्वास्थ्य वर्द्धक कृषि भूमि होनी चाहिये। प्रत्येक शहर एक प्रमुख उद्योग के लिये हो और वह चारो ओर से पूरक इकाइयों से घिरा हुआ हो, साथ ही इससे आगे बढ़कर किसी प्रकार के केन्द्रीकरण की उसे अनुमति न दी जाय। उदाहरण के लिए चूंकि बम्बई भारत की प्राकृतिक बन्दरगाह है अस्तु बम्बई विदेशी व्यापार का केन्द्र स्थान होना चाहिए और इसके सिवाय कुछ नहीं होना चाहिए। तभी बम्बई के लोगों का स्वास्थ्य बना रहेगा। हमने पूना जैसे शिक्षा केन्द्र अथवा दिल्ली जैसे राजनैतिक केन्द्र (राजधानी) में अनावश्यक रूप से बहुत से उद्योग खड़े कर उन्हें अस्त-व्यस्त कर दिया है। ये उद्योग दूसरे स्थानों पर स्थापित किये जाने चाहिए ताकि सभी लोगों को आराम मिल सके। आणविक शक्ति की सस्ती संचार व्यवस्था से यह और भी सरल हो जायगा और आधुनिक सुरक्षा की आवश्यकताओं के साथ इसका मेल भी बैठ जायगा। ऐसा करने के उपरान्त हर शहर एक औद्योगिक परिवार का घर बन जायगा और उसमें रहने वाला जन समूह अपने आपको घरेलू वातावरण में पायेगा, जबकि वर्तमान परिस्थिति में उन्हें किसी भी प्रकार से एक हाते (चाल) में रहने के लिए विवश होना पड़ता है। यदि भारत जीवित है और गांव में रहता है तो भारतीयों को अपना जीवन बसर अपने घरों में ही करना चाहिए। 'घर' भारतीय संस्कृति का केन्द्र है। केवल यही वह स्थान है, जहां पर बच्चे को जो कल के नागरिक हैं, उन्हें सर्वोच्च संस्कार मिलते हैं। घर का स्थायित्व सामाजिक गतिविधियों की गतिशीलता के विरुद्ध नहीं है, बल्कि इसके विपरीत मनुष्य ही गतिविधियों का गतिशील केन्द्र हैं। तड़के से ही मां घर में गाय का दूध दुहती है, देर शाम तक बच्चा बगीचे में पानी देता है और अपने मां-बाप को दिन भर की दिन चर्या बतलाने हेतु उनके इर्द-गिर्द इकट्ठा बैठता है और उनके शब्द, विद्वता और स्नेह की कहानियां सुनता है, मां के ममत्व में मुग्ध होकर वह स्वाभाविक रूप से उसकी पजा करता हैं और खाता है। भारतीय घर सभी प्रकार के महत्वपूर्ण घटनाओं का वह केन्द्र है, जहां मानव मात्र की संस्कृति प्रस्फुटित होती है। इस राक्षसी, कठोर मशीन की वेदी पर इस घर को समाप्त कर देना और फिर मानसिक संस्कृति के लिए श्रमिक शिक्षा की कक्षा में भाग लेने जाना आपने आप में बड़ी क्रूरता व उपहास का विषय है। ऐसी स्थिति के कारण ही बुद्धि और विज्ञान ने मनुष्य के ऊपर आघात किया है। इस पीड़ित (घायल) मन

में सुख को ढूढ़ना इस अहंकारी बुद्धि की एक दूसरी अनोखी खोज व विड़म्बना है। विनाश के इस मार्ग पर जाने के स्थान पर, हमें मशीन को ही गुलाम बनाना चाहिए, जैसे कि हमने कालान्तर से कुत्ते, बिल्लियों और दूसरे जानवरों को पालतू बनाया है। एक शान्त घर पश्चिम की तीनों विशेष देन जैसे–प्रेस, मंच और प्रचार के मुकाबले में मन को एक अच्छा, दृढ़ शिक्षक बनाने वाला है। परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु व्यक्ति को मशीन के पीछे नहीं भागने देना चाहिये, वरन् मशीन को व्यक्ति के उतने निकट लाना चाहिए, जितना सम्भव है। व्यक्ति को घरों में, छोटे समुदायों में, शहरों में रहना चाहिए और धीमे-धीमे प्रगति कर राष्ट्रीय और अन्त-र्राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा होना चाहिए। अभी भी वह एक छोटे दायरे में रहता है जो उसे उपलब्ध है अथवा जिसके वह खोज करने पर पा सकता है और अपने व्यक्तित्व को बनाता है और अपने को समूह के साथ समरस करता है। प्राकृतिक समूह के इसी वायुमंडल में वह अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिये समूह का ध्यान आर्कषित कर सकता है और स्वयं दूसरे व्यक्तियों अथवा समूह की मांगों को समझ सकता है और सहानुभूति दिखा सकता है। व्यक्ति से मानवता की ओर छलांग लगाने वाली गतिविधियों के अन्तर्गत मार्ग में बहुत से धोखे और अड़ंगे हैं। इस प्रकार की अस्वाभाविक छलांग ठीक और सही भातृभाव जो स्वतन्त्रता और समा-नता के बीच में समझौते वाला भाव है, को उत्पन्न करने में अयोग्य व असफल है। पाश्चात्य इस भातृभाव को भूल गया है। यही कारण है कि स्वतन्त्रता की खोज में उसने असमानता की बढ़ोत्तरी पाया है और उसे पूंजीवाद को धिक्कारना पड़ा है, साथ ही अब समानता की खोज में वह स्वतन्त्रता को नष्ट होना देख रहा है, तथा इस हेतु वह समाजवाद और साम्यवाद की भर्त्सना कर रहा है। भातृभाव के अन्तर्गत फ्रांसीसी क्रान्ति के तीन वेद वाक्य हैं–स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुभाव। भातृभाव घर और चूल्हे से उत्पन्न होता है। आदर्श पारिवारिक जीवन और एक आदर्श घर अर्थात "गृहस्थाश्रम", सामाजिक आर्थिक ढांचे की एक प्रथम स्व निर्धारित इकाई है। इस सामंजस्य व स्वनिर्धारण के स्वत्व को औद्योगिक परिवार, राष्ट्र अथवा इसी प्रकार की व्यापक समूह के एक विशाल दायरे के अन्तर्गत फैलाना होगा। एक जीव प्राणी के समान यह स्वनिर्धारित सामूहिक जीवन का सिद्धान्त, न केवल समूह में स्व निर्धारित है और न ही मत और प्रतिनिधियों के सम्मुख व्यवस्था के ही माध्यम से है, बल्कि अपने जीवन की हर घड़ी में है और अपने अस्तित्व के अन्तर्गत हर एक सदस्य में है साथ ही भारत में सही राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों के सभी सिद्धान्तों में से यही सर्वोच्च व स्थायी है तथा यही उसके निर्माण का आधार है। भारतीय मस्तिष्क की बुद्धि परस्सर आदतें, इन्हीं वातावरण में प्रकाश प्रेरणा पाती हैं और आत्मा की उच्चतम अनुभूति के रूप में फलती फूलती हैं, साथ

ही अपने स्व और आत्मा के इस विस्तृत स्वरूप के द्वारा एकात्मता और एकता की स्वाभाविक सत्ता, महानुभूति क्रमबद्ध विकसित स्वतन्त्रता, जीवन की लचीली व जीवित व्यवस्था, सामूहिक अस्तित्व की स्वतन्त्रता, पूर्णता व एकता के कानून प्रदान करती हैं। यही वह पद्धति है, जिसके आधार पर व्यक्ति की आत्मिक शक्ति की सबसे आधार भूत, सरल, सार्वभौम और समान भाव को राष्ट्रोत्थान के निर्माण में एक व्यापक और समूचे रूप से नियन्त्रित किया जाता है। एकात्म मानववाद का स्वप्न इसी निर्माण के आधार पर चरितार्थ होगा। थोड़ा सा धैर्य हमें यह दिखला देगा कि मानव अस्तित्व के इस 'निर्दोषं हि सम ब्रह्म' शक्ति से कोई भी दूसरा शक्तिशाली, गतिशील और सर्वव्यापी सत्ता नहीं है। इस परम्परागत भाव के अन्तर्गत निर्णीत व्यवस्था के सिद्धान्तों द्वारा रीति-रिवाज तथा संस्थाओं के रूप में स्पष्ट रूप से क्रमशः विकास होना है। यह मनुष्य के सुख को बढ़ाने के लिये सौ गुनी अधिक तेजस्वी और बुद्धि पूर्वक की गयी योजना है। इसके मुकाबले में अफसर शाही और औद्योगिक राजकीय कृत्रिम संगठनों के बारे में सोचा जा सकता है, ज यांत्रिकीय व तार्किक बुद्धिमत्ता से काम करते हैं और जो आधुनिक विज्ञान से ग्रहण करके हर प्रकार की सम्भव बुद्धि परस्सर चतुराई व कुशलता प्राप्त करते हैं। वस्तुतः हमें इस प्रकार के आधुनिक विज्ञान की देन को भी ग्रहण करना चाहिये और भविष्य के लिए व्यापक उपलब्धियों की कोशिशों में मानव जाति के नेता के रूप में खड़ा होना चाहिये। राष्ट्रीय श्रम आयोग के समान इस उच्चस्तरीय संगठन से यह अपेक्षा है कि वह श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की सही योजनाओं को प्रस्तुत करेगा, क्योंकि अपने राष्ट्रीय ध्येय की इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इस शताब्दी के बचे हुए वर्षो तक के लिये वह यह मार्ग दर्शन करेगा। इसी में मनुष्य कल्याण का सिद्धान्त और मार्ग निहित है।

आवास

ऊपर की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि हर एक श्रमिक के परिवार के लिये 'घर का प्राविधान' करना किसी भी कल्याणकारी कार्यक्रम का सर्व प्रथम व अति अनिवार्य कार्य है, किन्तु यह तब तक सम्भव नहीं है, जब तक हमारे औद्योगिक उत्थान के लिये विदेशी तकनीकी के अविवेकपूर्ण स्वीकृति को निश्चित और अन्तिम रूप से समाप्त नहीं किया जाता। वर्तमान काल में हम यह दृश्य देखते हैं कि किस प्रकार समुद्र से कुछ वर्ग मील भूमि के पुनर्ग्रहण हेतु बम्बई जैसे शहर में लाखों रुपया खर्च किया जा रहा है। इस प्रकार का महंगा पुनर्ग्रहण बहुसंख्यक आबादी को बसाने की कोई भी गारन्टी प्रदान नहीं कर सकता। बम्बई की सड़कों की पटरियों पर जो हजारों लोग पड़े हुये हैं, अथवा उन लाखों पुरुष श्रमिकों, जिनको आवास व्यवस्था की कमी है और जो १५ से २० व्यक्ति एक ही कमरे में भीड़ के

.मान रहते है, और उनके बाल बच्चे हजारों मील दूर निवास करते हैं, उनकी रहने की व्यवस्था इस प्रकार के पुनर्ग्रहण से नहीं हो सकता। बम्बई में यातायात सुविधाओं को प्रदान करने के लिये भी ओव्हर हेड़ पुल, भूमिगत सुरंगे व रेलवे को बनाने के लिये करोड़ों रुपये झोंके जा रहे हैं, और दूसरी ओर मध्य प्रदेश का भीतरी क्षेत्र एक विशाल भूमि का दृश्य प्रस्तुत करता है, जहां मनुष्य देखने को भी नहीं मिलता, वहां की एक व्यापक प्राकृतिक देन (खनिज आदि) जिनका उपयोग नहीं किया गया तथा साधनों की प्राकृतिक देन जो बिना उपयोग किये हुये पड़ी है और वह भूमि जो किसी भी काम चलाऊ यातायात के अभाव में छोड़ दी गयी है। मानव कल्याण, राष्ट्रीय उत्पादन और समानता के लिये यह अनिवार्य है कि हम अपनी आबादी को अच्छी प्रकार से फैलाये और देश के सभी भागों में उनके रहने की आवास व्यवस्था करें। हर एक उद्योग को कानून से बाध्य करें कि वे अपने श्रमिकों के परिवार के लिये एक अच्छा घर दें। यह व्यवस्था बिना किये उन्हें अपने उद्योग में किसी व्यक्ति को रखने की अनुमति नहीं देनी चाहिये। सभी नये उद्योगों के लिए जो इसके पश्चात खड़े हों, उन्हें पूर्ण रूप से इस प्राविधान को लागू करने हेतु अनिवार्य करना चाहिये। औद्योगिक ढांचे की हमारी विकेन्द्रित प्रणाली में यह अनिवार्यता ठीक बैठती है, जो हमने इस अध्याय के शुरू में प्रस्तुत किया है। उन उद्योगों के लिए जो पहले से काम कर रहे हैं, श्रमिकों की लिये आवास व्यवस्था हेतु क्रमबद्ध कार्यक्रम अनिवार्य होना चाहिये। इस हेतु यदि आवश्यक हो तो उस उद्योग के स्थान को भी बदल देना चाहिये तथा सरकार को इस तबादले के लिये सहयोग प्रदान करने हेतु सम्मुख आना चाहिये। न्यूनतम शिक्षा के समान न्यूनतम आवास व्यवस्था को भी राष्ट्रीय कार्यक्रम का एक अनिवार्य विषय मानना चाहिये।

हमें यह अवगत है कि सरकार एक वित्तीय एजेन्सी है—मकान बनाने की भी वही एजेन्सी है और इस सन्दर्भ में वह एक व्यापक आवास व्यवस्था के कार्यक्रम को हाथ में ले रही है, जो विशेषत: औद्योगिक श्रमिकों, कम आय वाले समूहों व पिछड़े वर्ग और ट्राइब्स के उपयोग के लिये ही है। भिन्न-भिन्न हाउसिंग बोर्डस, स्थानीय और पोर्टट्रस्ट अधिकारी, हाउसिंग कोआपरेटिव और निजी क्षेत्र के कर्मचारीगण बड़े-बड़े ऋण केन्द्रीय और राज्य सरकारों, एल० आई० सी०, कामशियल बैंक्स और एपेक्स हाउसिंग कोआपरेटिव बैंकस् से पा रहे हैं और शहरी सहकारी समितियां भी आवास व्यवस्था के लिए वित्तीय सहायता प्रदान कर रहीं हैं यद्यपि व्यावसायिक बैंकों के समान इनकी सहायता तात्कालिक वित्तीय आवश्यकताओं पर काबू पाने के लिये वित्तीय व्यवस्था के रूप में ही होती है। एपेक्स कोआपरेटिव हाउसिंग फाइनेन्स सोसाइटीज, जिनका लम्बे अरसे तक ऋण देने का ढांचा दो क्रमों में विभाजित है और जो कोआपरेटिव हाउसिंग फाइनेन्स के क्षेत्र

में हैं, शुरुआत करने का पूरा क्षेत्र प्रसिद्ध प्रमुख संचालक श्रद्धेय श्री बी० एल० मेहता को है। ऐसा प्रतीत होता है कि बिल्डिग सोसाइटी के रूप में सहकारी गतिविधियां मद्रास राज्य में कोयम्बटूर स्थान पर सन् १९१३–१४ में सर्व प्रथम प्रारम्भ हुयी और इसी प्रकार इसके पद चिन्हों पर ही बम्बई में सारस्वत कोआपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी बनायी गयी। हमारे देश के निर्मम विभाजन के बाद पाकिस्तान से हमारे लोगों के भारी संख्या में आने की समस्या के पैदा होने तक, इस क्षेत्र में सरकारी गतिविधियाँ लगभग नहीं के बराबर थीं। व्यापक संख्या में शरणार्थियों के पुनर्वास कार्यक्रम के ढाँचे के अन्तर्गत जिसमें वित्तीय सहायता व अनुदान भी सम्मिलित है, मकान बनाने की कार्यवाही को प्रथम पंचवर्षीय योजना में विचार किया गया और जो आवास व्यवस्था औद्योगिक श्रमिकों, कम वेतन पाने वाले समूह और क्षेत्रीय समुदाय के पीड़ित वर्गों के लिये की गयी थी, हमें ऐसा कहना चाहिये कि वही व्यवस्था औद्योगिक और सामाजिक शरणार्थियों के लिये साथ ही राजनैतिक शरणार्थियों के लिए भी हुई राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में हमारी व्यापक गतिविधियों का परिणाम यह हुआ है कि जनता की अपनी परम्परागत घरों में रहना असम्भव हो गया है. उन्हें आधुनिक शहरों की बहुत ही अपमानित परिस्थितियों में शरण लेने को बाध्य करती हैं तथा जिन्हें बड़ी संख्या में अंधी कोठरियों और कारागार की तनहाई के समान घरों में रहना पड़ता है, जिससे उनका स्वास्थ्य और नैतिकता दोनों बिगड़ती हैं। इतने पर भी जितनी ही अल्पमात्रा में इन असहाय परिवारों को एक कमरा दिया गया है, हमने उसे कल्याणकारी गतिविधियों का नाम दे दिया है।

अनुदान प्राप्त औद्योगिक आवास व्यवस्था की योजना जिसे सितम्बर, १९७२ में शुरू किया गया था, के अनुसार केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों को ऋण और अनुदान हेतु वित्तीय सहायता देने के लिये सोचा गया था, जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को-आवास बोर्डो, म्युनिसिपल बाडीज और औद्योगिक सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक श्रमिकों के लिये आवास व्यवस्था हेतु धनराशि मुहैय्या करनी थी। इस व्यवस्था को करने के लिये कारखाना कानून १९४८ के अन्तर्गत परिभाषित किया गया है और अथवा जिन पर कर्मचारी प्राविडेन्ट फण्ड एक्ट, १९५२ भी लागू होता है। औद्योगिक श्रमिकों द्वारा बनायी गयीं आवास सहकारिता सोसाइटीज पर ६५ प्रतिशत तक ऋण के तौर पर सहायता पा सकती हैं, साथ ही हर मकान की अनुमानित लागत पर २५ प्रतिशत अनुदान प्राप्त हो सकता है और शेष १० प्रतिशत प्राविन्डेन्ट फण्ड राशि से वापस न होने वाले ऋण के रूप में लिया जा सकता है। योजना के अन्तर्गत ये सब लगायी गयी हिसाब की धनराशि अधिकतम अनुमानित कीमत की सीमा पर आधारित है, किन्तु यह देखा गया है कि वास्तविक खर्चे सदैव इन सीमाओं से बहुत अधिक होते हैं। साथ ही सरकारी योजनाओं की स्वीकृति में आमतौर से

लगभग देरी होती ही है। किश्तों के भुगतान से सम्बन्धित बहुत सी कार्यवाहियों की औपचारिकता में बहुत्त अधिक देरी हो जाने से अत्यधिक चिढ़चिढ़ापन पैदा करती हैं। उपयुक्त स्थान और मकान बनाने की सामग्री के प्राप्त करने में जो कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं, वे समस्या को और अधिक उग्र एवं जटिल बनाती हैं। हर प्रकार की कमी और देरी के साथ-साथ उसमें अनैतिक व्यवहार का भी समावेश रहता है और इन तथ्यों के साथ जुड़ी हुयी बेइमानी के ढंग–जो खराब प्रकार की सामग्री के प्रयोग से सम्बन्धित हैं, अनुमानित स्तरों की प्राप्ति में बहुत अधिक कमी ला देती है, और योजना की उपयोगिता को अत्यधिक कमजोर बना देती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिये बहुत सी धन-राशि जो एक निश्चित काल के लिये निश्चित की गयी है, का उपयोग नहीं किया गया है, जब कि पनाह लेने के लिये 'मुहताज' श्रमिकों के कष्ट लगातार बढ़ोत्तरी पर रहे हैं। इन योजनाओं की उपयोगिता को बढ़ाने के लिये कई राज्य सरकारों ने कार्यविधि की ब्योरे में बारम्बार परिवर्तन किये हैं, परन्तु इन सब परिवर्तनों का सामूहिक परिणाम अत्यधिक द्विविधा उत्पन्न करने में ही हुआ है और यह स्थिति योजना के कार्यान्वियन हेतु अधिकृत अधिकारी के निरन्तरता की अनुपस्थिति के कारण हुआ है। इसलिये जहाँ एक ओर यह देखा जाता है कि समाज का एक बड़ा भाग अच्छी आवास व्यवस्था के लिये आकांक्षा रखता है वहीं दूसरी ओर हमारी सरकार है, जो एक योजना के क्रियान्वयन हेतु बहुत बड़ी धनराशि देने की प्रतीक्षा कर रही है। इसी बात के आधार पर यह दावा करती हैं कि मकान बनाने की पूरी कीमत को वह बरदाश्त करेगी, साथ ही आवश्यकता से अधिक ऋण देने की भी वह घोषणा करती है। हमारे कल्याणकारी राज्य की कल्याणकारी प्रशासन के ऊपर ऊपर टिप्पड़ी के लिये यह आश्चर्यजनक एवं खेदजनक विषय है। यह देखने योग्य है कि एक ओर योजना और वायदे हैं और दूसरी ओर करनी। इनके बीच के अन्तर सभी स्तरों के कल्याण के सामूहिक पक्ष को चोट पहुंचा रहे हैं। जब कि कल्याण-कारी अधिकारियों (वेलफेयर आफीसर्स) के प्रभाव परियोजना स्तर पर के कल्याण-कारी बजट से लेकर राज्य और सरकार के कल्याणकारी योजनाओं तक रहता है। इस निराशाजनक प्रयत्नों की दूरी को दूर करने के अन्तर्गत बहुत सी सार्वजनिक समितियां जैसे–आवास मंडल, म्युनिसिपल अथारिटी तथा झुग्गी झोपड़ी हटाने की योजनायें अग्रसर हुयी हैं जो सेडूल्डकास्ट, सेडूल ट्राइब्स, घूमन्तू जातियां (बन्जारा आदि) तथा अनामांकित जातियों से सम्बन्धित हैं, अग्रसर हुयी हैं। डाक लेबर बोर्डस, बागान लेबर बोर्डस, खदान वेलफेयर फण्ड आदि संस्थाओं ने भी इसमें उपयोगी योगदान दिया है। जहाँ कहीं भी इन एजेन्सीज ने वित्तीय एजेन्सी के स्थान पर मकान निर्माण एजेन्सी की भूमिका निभायी है, इसमें कोई शक नही है

कि कम आय वाले समूह को रहने का स्थान प्राप्त कराने में कुछ राहत मिली है। जीवन बीमा निगम ने इन्हें तथा अन्य दूसरी एजेन्सीज–एपेक्स हाउसिंग सोसाइटी और "अपना मकान करने की योजना" को काफी बड़ी मात्रा में कार्यरत पूंजी प्रदान की है। इसी प्रकार ठेकेदारों और दूसरी निजी मकान वाली एजेन्सीज के लिये कामर्शियल बैंक, मार्टेज बैंक और केन्द्रीय तथा शहरी कोआपरेटिव बैंकों ने भी निर्माण के काम को सहायता प्रदान करने के लिये अल्पकालीन वित्तीय सहायता दी है। श्रमिकों ने अपने द्वारा भी विशेष प्रयत्न किये हैं, जिसके अन्तर्गत उनकी अपनी विशेष संस्थायें सेवा के लिए सामने आयी हैं। मजदूर सहकारी बैंक लि० अथवा पीपुल्स कोआपरेटिव बैंक लि०–जो अहमदाबाद में है, ने इस दिशा में प्रयत्न किये हैं–जो उदाहरण के रूप में है, तथा उन्होंने औद्योगिक श्रमिकों के लिये की गयी आवास योजनाओं में वित्तीय सहायता देने में विशेषता प्राप्त की है। मकान निर्माण के संदर्भ में कुछ व्यक्तियों अथवा फर्मों ने भी जिन्होंने श्रमिकों के हितों को प्रिय मान लिया है, प्रशंसनीय योगदान दिये हैं। इस सन्दर्भ में सबसे उल्लेखनीय प्रयत्न कोयम्बटूर के जे० डी० नायडू के हैं, जिन्होंने औद्योगिक श्रमिकों के लिए सस्ते और स्वस्थ मकान बनवाये हैं। श्री वी० वी० गिरि ने श्री नायडू के प्रयत्नों की प्रशंसा की है और इसके व्यापक उपयोग के लिए अध्ययन की सिफारिश भी की है। कुछ नियोजक जिसमें कामर्शियल बैंक उल्लेखनीय हैं, अपने श्रमिकों और अधिकारियों को मकान बनाने हेतु बिना सूद अथवा सस्ते दर पर धनराशि देने की उदार सहायता हेतु सामने आये हुये हैं। कर्मचारी प्राविडेन्ट फण्ड संगठन, जो देश की द्वितीय व्यापक संस्थागत पूंजी लगाने वाली संस्था है, और जिसकी ९०० करोड़ रुपये के लागत की क्षमता है और जो मात्र जीवन बीमा निगम से ही पीछे है, (क्योंकि जीवन बीमा की लागत की क्षमता १००० करोड़ रुपये है ने भी यह निर्णय किया है कि वह भवन निर्माण हेतु और बने बनाये मकानों के खरीदने की ओर बढ़ने का निर्णय किया है। यह कार्य महत्वपूर्ण शहरों में होगा और लाभ के आधार पर वे भवन किराये पर दिये जायेंगे।

आश्रय पाने के लिये कम से कम आवश्यकताओं को पूरी करने के संघर्ष में श्रमिकों की सहायता के लिए उपर्युक्त कुछ प्रयत्न हैं, फिर भी ये प्रयत्न समस्या को केवल मात्र छू पाते हैं। तीव्रगति से होने वाले नगरीकरण रहने की कीमतों में लगातार बढ़ोत्तरी, नगरों में मकान बनाने हेतु स्थान की कमी, जमीन की ऊंची कीमत, निर्माण सामग्री की कमी व ऊंची कीमतों-जिनमें विशेष रूप से सीमेन्ट, लोहा और इस्पात और निर्माण उपकरण आदि हैं, ने साधारण मकान के बनाने में श्रमिक के लिये एक स्वप्न बना दिया है, और साथ ही स्थान के चयन तथा उसके रहने के अनुसार मकान के नक्शे अथवा पद्धति और शिल्पकारीगरी ने श्रमिक के लिए एक

असम्भव और असम्भव कल्पना बना दी है। एक कमरे वाले मकान जिसका मालिक किराया-उसके मासिक वेतन के आधे भाग को खा जाता है, वह भी नहीं मिलता, जब तक अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति पहली पगड़ी के रूप में वह गिरवी नहीं रख दे। सम्पत्ति का असमान वितरण अविवेकी औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण हुआ है, जिसके अन्तर्गत अमीरों के बड़े बंगलों और उच्च मध्यम वर्ग के रहायसी इलाकों के स्वरूप इस बात के सबूत व चित्रण के रूप में दिखाई देते हैं, जिन्हे उन लाखों ईर्ष्याभरी आंखों द्वारा देखा जाता है-जो सड़क पर अथवा घनी झुग्गी झोपड़ियों में अथवा एक कमरे वाले रहायसी मकानों में सोते हैं। निश्चित ही अब वह समय आ गया है, जब हर श्रमिक के लिये उचित आवास व्यवस्था के प्राविधान को हर एक उद्योग, व्यापारी समूह, फर्म व संस्थान अथवा सरकारी विभाग या उद्योग में अनिवार्य कर देना चाहिये साथ ही कुछ भी उत्पादन करने वाले व्यक्ति अथवा वेतन भोगी और उसके पूरे परिवार को रहने योग्य रहाइस की सुविधा कारखाना न दे सके तो उसे पाप करार कर देना चाहिये। इसी प्रकार यह आवास व्यवस्था केवल मात्र सीमेन्ट कांकरीट का अस्तबल नहीं होना चाहिये, जहां पर किसी प्रकार मनुष्यों के झुण्ड को घुसेड़ दिया जाय-जैसा कारागार की तंग तनहाई कोठरी अथवा तहखाने में होता है, बल्कि उसे एक अच्छा घर प्राप्त होना चाहिये, जिसमें वह जीवन पर्यन्त रह सके। किसी भी कल्याणकारी कार्यक्रम में यह न्यूनतम आवश्यकता है, इतना ही नहीं इस हालत में तो कल्याण शब्द भी लागू नहीं होता, यह तो मनुष्य को रहने की उसी प्रकार से न्यूनतम आवश्यकता है, जैसे कि खाना और वस्त्र। आत्मा और शरीर को इकट्ठा बनाये रखने के लिये यह आवास व्यवस्था अनिवार्य है। इसके पहले कि व्यक्ति काम के बारे में सोच सके। व्यक्ति का यह जन्म सिद्ध अधिकार है, और यह तब तक करना सम्भव नहीं जब तक हम विदेशी तकनीकी के अविवेक पूर्ण स्वीकृति और उसके भयानक शहरीकरण को समाप्त नहीं करते तथा अपनी योजना की प्रक्रिया को अधिक गम्भीर और अधिक मानवीय आधार पर पुनः व्यवस्थित नहीं करते। योजना की प्रक्रिया में मनुष्य जीवन ही केन्द्र देवता है, जिसको उसके कल्याण हेतु सभी कुछ समर्पित करना चाहिये। मनुष्य जीवन का सर्व प्रथम सामूहिक प्रगटीकरण उसके अपने घर में पारिवारिक जीवन के विकसित होने में है। ज्यों ही औद्योगीकरण उसके घर और उसकी आवश्यकताओं की तिलाञ्जलि करता है अथवा उसको टाल देता है, मनुष्य के निर्माण को विनष्ट कर देता है, कोई भी कल्याणकारी गतिविधि एक अच्छे घर का स्थान लेने के योग्य नहीं है। इसलिए एक सही कल्याण का सर्वप्रथम विचार यह होना चाहिये कि औद्योगिक गतिविधियों के समूचे विस्तार के लिये यह अनिवार्य कर दिया जाय कि वे अपने आपको पारिवारिक जीवन की आवश्यकताओं के समरूप बनायें। मशीन को मनुष्य

का मालिक नहीं होना चाहिये, बल्कि मनुष्य को मशीन का पूर्ण अधिकारी होना चाहिये, तभी सही कल्याण प्रारम्भ होगा।

स्वास्थ्य और अन्य सुविधायें

निर्माण कार्यक्रमों में अगला प्रश्न जो हमारे ध्यान को आकर्षित करता है, श्रमिक और उसके परिवार के स्वास्थ्य के बारे में है। पुन: यह प्रश्न भी एक 'अच्छी जीविका' का ही है। किसी भी स्वास्थ्य कार्यक्रम का उद्देश्य बीमारी व अल्पायु मृत्यु की घटनाओं को कम करना है। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि बीमारी के पूर्व निदान को अत्यधिक महत्ता दी जाय बजाय इसके कि रोग होने पर उसे ठीक करने का उपाय हो। इसमें कोई शक नहीं है कि बीमारी को रोकने के लिए दवाइयों के उपयोग हेतु उपयुक्त प्रचार चाहिये और यह सन्तति उत्पन्न होने के पहले से ही प्रारम्भ होना चाहिये। पाठशाला अवधि बच्चों के बलवान और स्वस्थ आदतों के संस्कार के लिए एक आधारभूत महत्ता व स्थान रखती है। स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों के बारे में जितना राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सोचा है, उसके मुकाबले में इसका क्षेत्र व्यापक है। इसकी आधारभूत महत्ता को ध्यान में रखना चाहिये। औद्योगिक आवास व्यवस्था और श्रमिक कालोनीज के खड़े होने के कारण सामूहिक जीवन में बच्चों के स्वास्थ्य सम्बन्धी देख-रेख औद्योगिक कल्याण गतिविधियों का उतना ही अंश बन रहा है, जितना कि अन्य किसी सामाजिक गठन का। बहुत से उद्योगों ने पहले से ही परिवार नियोजन को प्रोत्साहन करने में दिलचस्पी दिखाई है। यह और भी अच्छा होगा कि वे सामाजिक आरोग्य शास्त्र, स्वस्थ आदतों के विकास, शारीरिक संस्कृति तथा पूर्व निदान चिकित्सा की पद्धति हेतु श्रमिक के प्रति अपनी जिम्मेवारी निभाने के रूप में विचार करें। विशेष रूप से यह आवश्यक है कि हर एक उद्योग, हर एक श्रमिक के हर वर्ष में पूर्ण स्वास्थ्य निरीक्षण के खर्चे को वहन करें अथवा उसे अनिवार्य रूप से प्रदान करें और स्वास्थ्य निरीक्षण में पाये गये कमजोरियों अथवा बीमारियों को ध्यान में रखकर उचित चिकित्सा को अपनावें। इस सुविधा को श्रमिक के परिवार तक भी बढ़ाना चाहिये। इससे ही स्वास्थ्य और उत्थान को बढ़ोत्तरी मिलेगी। श्रमिक के अनुपस्थित होने में कमी आयेगी तथा चिकित्सा सम्बन्धी खर्चे कम होंगे। साथ ही उद्योग को यह देखने की जिम्मेवारी होनी चाहिए कि कार्यस्थल पर पूर्ण रूपेण स्वच्छता और प्रकाश तथा स्वच्छ वायु प्रदान हो और कार्य स्थल के मानचित्र में किसी भी स्वाभाविक सुविधाओं को भुलाया न जाय, उक्त सुविधाओं को देने में लघु संस्थानों और दुकानों को विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। कानून में कुछ न्यूनतम आवश्यकताओं की, जैसे पीने के पानी, शौचालय, प्राथमिक उपचार व्यवस्था, आवश्यक प्रकाश व स्वच्छ हवा, धुयें व इसी तरह की तंग करने वाली वस्तुओं से बचाव व स्वच्छता आदि प्रदान

करने का प्राविधान हो और साथ ही किसी भी व्यापार के करने वाले अथवा एक भी व्यक्ति को काम देने वाले नियोजक के लिए पूर्णरूपेण अनिवार्य हो। यदि ऐसा पाया जाता है कि किसी संस्थान का मालिक उक्त बातों की ओर दुर्लक्ष कर रहा है, तो सरकार को उक्त व्यवस्था के लिए इमारतें बनाकर इन प्राविधानों को अनिवार्य रूप से लागू कराना चाहिए तथा यदि आवश्यकता पड़े तो सम्बन्धित खर्चे को उन मालिकों से वसूल करें। कुछ और सुविधाओं जैसे–कैन्टीन अथवा स्वास्थ्य व चिकित्सा सम्बन्धी सहायता आदि देना हर छोटे संस्थान के लिए आर्थिक दृष्टि से सम्भव न हो तो भट्टी तथा भोजन पकाने की व्यवस्था तो उन्हें कर ही देनी चाहिए। सम्भवत: यह अच्छा होगा कि स्थानीय प्रशासन को यह घोषणा करने का अधिकार दिया जाय कि किसी एक क्षेत्र के लघु संस्थानों के समूह को कैन्टीन अथवा चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं को प्रदान करने के लिए एक उद्योग अथवा संस्थान के रूप में उस समूह को स्वीकार कर ले। कुछ अन्य सुविधायें, जैसे–महिला श्रमिकों के बच्चों के लिए सार्वजनिक खेलकूद व मन बहलाव की व्यवस्था अथवा उचित मूल्यों की दुकान अथवा कार्य स्थल से घर तक या निकटतम रेलवे स्टेशन तक यातायात की व्यवस्था आदि करने के लिए प्राविधान में बढ़ा देना चाहिये। संस्थानों के एक समूह को, जिनकी कर्मचारियों की संख्या एक परिभाषित संख्या से अधिक हो, इन सुविधाओं के देने हेतु एक संस्थान माना जाना चाहिए। इन संस्थानों के नियोजकों को इन लाभकारी सुविधाओं को देने में हिस्सा बटाना चाहिए व खर्चे में भागीदार बनना चाहिए और उसका आधार हर एक संस्थान के श्रमिकों की संख्या के अनुपात के अनुसार रहे। यह भी देखना आवश्यक है कि इन कैन्टीनों में दिए जाने वाला खाना सस्ता और स्वास्थ्यवर्द्धक होना चाहिए और उद्योग द्वारा नियुक्त चिकित्सक तथा चिकित्सा अच्छे स्तर की होनी चाहिए और इसे बड़ी खुशी व नम्रता पूर्वक दिया जाना चाहिये। कैन्टीन में अपूर्ण भोजन और चिकित्सकों के अहंकार भरे दुर्व्यवहार तथा चिकित्सा चिट्ठे को देने में दुर्लक्ष करने आदि की बहुत सी शिकायतें हमें मिली हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एक कैन्टीन को स्थापित करने और डिग्री प्राप्त चिकित्सक की नियुक्ति करने के पश्चात उद्योग उनके ऊपर से अपने नियंत्रण को खो बैठता है और उन्हें चलाने के लिए कोई जिम्मेदारी नहीं लेता। उक्त स्थितियों से यह परिणाम निकल रहा है कि देश की सेवा संस्थाओं से श्रमिक वर्ग अपनी समूची आस्था खो रहा है और हृदयहीन बनकर कुण्ठित दृष्टिकोण से ग्रस्त हो रहा है। अच्छा भोजन और चिकित्सा मनुष्य जीवन के लिये रीढ़ की हड्डी के समान महत्ता रखती हैं। इस संदर्भ में जान बूझकर किसी भी प्रकार के दुर्लक्ष्य करने को फौजदारी का जुर्म मानना चाहिए। यह अच्छा होगा कि इन कल्याणकारी गतिविधियों के प्रबन्ध में श्रमिकों को एक

महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय इन्हें औद्योगिक फण्ड से वित्तीय सहायता मिलनी चाहिए, जिसे उत्पादन अथवा बिक्री के ऊपर चुंगी या कार्यगत पूंजी के ऊपर एक निर्धारित प्रतिशत के निश्चित दर के रूप में खड़ा किया जाना चाहिए और इसे एक समुचित त्रिदलीय गठन, जो स्थानीय, राजकीय व राष्ट्रीय स्तर पर हो, को सुपुर्द करना चाहिए। सरकार व स्वायत्तशासी प्रशासन, जैसे–नगर पालिका को भी इस कल्याण-कारी कार्य में योगदान देना चाहिए। छोटे-छोटे संस्थानों को चाहिए कि वे प्राविडेन्ट फण्ड अथवा कर्मचारी राज्य बीमा निगम के समान कुछ उल्लिखित विषयों का प्रबन्ध करें और शेष दूसरों के लिए यह आवश्यक है कि वे संस्थानों के समूह को एक इकाई के रूप में घोषित करें –जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। इन योजनाओं के खर्चे के लिए श्रमिकों से किसी प्रकार की धनराशि वसूल करने से कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि उद्योग अथवा सरकार के समान क्रमशः धनोपार्जन अथवा कर वसूली के कार्य को करने वाला श्रमिक नहीं होता। एक बार कल्याण के सम्पूर्ण उद्देश्य पूर्ति हेतु धनराशि की स्थापना हो जाती है, तो श्रमिकों की भिन्न-भिन्न गतिविधियों और धनराशि की उपलब्धता को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार की गतिविधियां प्रयोग में लायी जा सकती हैं। जो सुविधायें उपलब्ध हो सकती हैं, वे निम्नलिखित हैं–शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न सुविधायें, खेलकूद, कला, मनोविनोद, विभिन्न आदतों व संस्कारों को पुरस्कार द्वारा बढ़ोत्तरी, कार्यस्थल अथवा घर पर कई प्रकार की सुविधाओं का प्राविधान, जैसे–सस्ती धुलाई, बीमार व वृद्ध लोगों के लिए चिकित्सा सम्बन्धी उपकरण, विश्रामगृह, पुस्तकालय, अवकाशकालीन पर्यटन और विश्राम गृह व अन्य सभी प्रकार की सहायता जैसे–बच्चों के लिए पुस्तक व दूध, महिलाओं के लिए सिलाई मशीन, पंगु व्यक्तियों के पुर्नवास व्यवस्था, वृद्धावस्था के लिए गृह व्यवस्था तथा श्रमिकों व जन-समुदाय के लिए भिन्न प्रकार के मनोविनोद का प्रबन्ध करना आदि। यह सूची इतनी लम्बी हो सकती है कि जिसका अन्त नहीं है, क्योंकि 'कल्याण' की एक व्यापक परिभाषा है इस सन्दर्भ में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि बाहरी कर्मचारी जो अदृश्य हैं, को भुलाया नहीं जा सकता। उसे केवल मात्र बरसाती छाता सर्दी के कपड़े और वर्दी तथा गम बूट्स और एक सूटकेश दे देना मात्र पर्याप्त नहीं है, ये तो अनिवार्य रूप से उसे मिलनी ही चाहिए, और साथ ही उसके आवास व्यवस्था की विशेष कठिनाइयों, लगातार चलने के परिणाम स्वरूप भोजन और निद्रा में अनियमितताओं और उसके बच्चों की शिक्षा में कठिनाइयों और पारिवारिक जीवन से वंचित रहने आदि को उचित रूप से पूरा करना चाहिए। उसके कार्य के घंटे व कार्य के बोझ को ठीक प्रकार से नियंत्रण और विशेष सुविधाओं के प्राविधानों द्वारा पूरा करना चाहिए, ताकि वह सामूहिक जीवन में भाग ले सके। उसके भोजन व आवास की आवश्कताओं

को यात्री आवास व्यवस्था को व्यापकता देने से अच्छी प्रकार से पूरा किया जा सकता है। म्यूनिसिपिल तथा स्थानीय संस्थाओं के लिए यह अनिवार्य कर देना चाहिए कि वे चौबीसों घंटे की ड्यूटी तथा चलते फिरते रहने वाली जिम्मेदारी वहन करने वाले लोगों के लिए उचित भोजन और आश्रय स्थान प्रदान करें। सड़क व रेलवे निर्माण और रख रखाव करने वाले श्रमिकों की जो दयनीय स्थिति है, उसे देख कर इन कर्मचारियों के नियोजक अथवा सरकार की किसी भी प्रकार की प्रशंसा नहीं की जा सकती। अस्थायी व ठेके के श्रमिक के स्तर को देखकर, उनके लिए ऐसी कोई भी रुकावट नहीं होनी चाहिए कि उन्हें और उनके परिवार के लिए उपयुक्त कल्याणकारी सुविधायें न दी जांय। श्रमिक अक्सर अपने योगदान के स्तर के लिए कल्याणकारी प्राविधानों के स्तर से ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं। यह कहना गलत न होगा कि भारतीय हस्त कला, कुशलता और उत्पादकता में कमी का एक प्रमुख कारण श्रमिकों की आवश्यकताओं के प्रति दिए जाने वाले ध्यान तथा कल्याणकारी गतिविधियों की कमी में निहित हैं।

कल्याणकारी अधिकारी (श्रम कल्याण अधिकारी)

विशेषज्ञता के विकास से जिसने उत्पादन की व्यापक पद्धतियों को प्रस्तुत किया है, उद्योग में उस कल्याणकारी कार्य को एक विशेष एजेन्सी के हाथ में सुपुर्द किया गया है और वह एजेन्सी कल्याणकारी अधिकारी के आधीन रहती है। यह वैसा ही है, जैसा कि होना चाहिये। बहुत से नियोजक इसकी नियुक्ति करके कल्याणकारी कार्यों की समाप्ति समझ लेते हैं अथवा अधिकतम श्रम कल्याण हेतु कानूनी जिम्मेवारियों के पूरा करने के लिये कल्याणकारी अधिकारी को जिम्मेवार मानते अथवा वे इसका बन्दोबस्त कर लेते हैं कि कल्याणकारी सुविधाओं के बारे में जो शिकायतें हों वे एक व्यापक स्वरूप न धारण कर लें, जिनका कि वे प्रबन्ध नहीं कर सकते। भारतीय उद्योग में इससे भिन्न एक अन्य प्रकार की विचार श्रृंखला है, जिसमें कल्याणकारी अधिकारी को एक तीसरी शक्ति के रूप में देखा जाता है तथा जिसके अन्तर्गत उसे श्रमिक और प्रबन्धक जैसी परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच में तटस्थ स्थिति पैदा करने वाला मानते हैं अथवा उसे लाइजन आफिसर (Liasion afficer) के रूप में मानते हैं। अक्सर कल्याणकारी अधिकारी की भूमिका और उसके कार्य के मूल्यांकन के लिये उपयोगी दृष्टि प्रस्तुत की जाती है और उसके योगदान को उत्पादन और लाभ के रूप में नापा जाता है, जैसी इसकी गतिविधियाँ कारखाने को प्राप्त होती हैं। नियोजकों का एक ऐसा वर्ग है, जो अपने आप को प्रगतिशील मानता हैं, वह कल्याणकारी अधिकारी को कुछ हद तक तटस्थता प्रदान करता है और इसकी भी चिन्ता नहीं करता कि संघर्ष की स्थिति

में उसका खुला मत श्रमिक के हक में चला जायगा। ऐसा प्रतीत होता है कि एक व्यापक मानवीय दृष्टिकोण अथवा दयालु भाव ही नियोजकों के इस दृष्टिकोण को बनाता है। परन्तु नियोजकों के सम्बन्ध में ये बखान जो अन्ततोगत्वा कुछ विशेष गतिविधियों को अनिवार्य रूप मे करने के लिये ही है अपने नियुक्ति के अन्तर्गत कल्याणकारी अधिकारी के वेतन का जब वे भुगतान करते हैं, तो इस तथ्य को नहीं छिपा सकते कि स्वच्छ कल्याणकारिता के स्थान पर कुछ और भी होता है, जो अभी भी कल्याण के नाम के अन्तर्गत अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु उनके द्वारा इच्छा व्यक्त की जाती है। यह द्वैतभाव बिना कारण के नहीं है। हर एक उद्योग में व औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में एक समय आता है, जब कल्याणकारी अधिकारी के काम की इस भूमिका का, जिसके अन्तर्गत वह प्रबन्धक का अभिकर्ता होता है, भयानक रूप से पर्दाफाश हो जाता है और कल्याणकारी अधिकारी औद्योगिक सम्बन्धों के समूचे चित्रण में अत्यधिक अधम व्यक्ति बन जाता है। यही कारण है कि बहुत सी हड़तालों में कल्याणकारी अधिकारी ही श्रमिक नेताओं के हाथ का पहला शिकार बनता है।

एक वास्तविक कल्याणकारी अधिकारी को श्रमिकों के सेवक के रूप में देखा जाना चाहिये अथवा कम से कम एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में देखा जाना चाहिये, जो श्रमिक समूह के कल्याण की बढ़ोत्तरी के काम के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित है। श्रमिकों और उनके परिवार की खुशी के अलावा इसको कोई और काम नहीं होना चाहिये। श्रमिकों के प्रति इस जिम्मेवारी के निभाने के स्थान पर कोई और काम नहीं होना चाहिये यही भगवान के चरणों में सीधी पूजा है और एक सही पूजा के समान, इसे भक्ति भाव से करनी चाहिये और किसी भी प्रकार के बदले की भावना नहीं रखनी चाहिये। पाश्चात्य विचारों व दृष्टिकोण में इसे विशेषज्ञों की श्रेणी के समान तथा सामाजिक सेवा के रूप में मानना चाहिये। यह व्याख्या ठीक उसी प्रकार से है, जिसको बम्बई श्रम संस्थान के लेबर इकनामिक्स के प्राध्यापक श्री वी० जी० मेहत्राज ने अपनी अच्छी अत्युत्तम ढंग से लिखी हुई पुस्तिका 'लेबर वेलफेयर एण्ड वेलफेयर आफिसर इन इन्डियन इन्डस्ट्री' में कल्याणकारी अधिकारी के काम के बारे में उल्लेख किया है। इस पुस्तक के अन्त में दिये गए चार्ट्स के अन्तर्गत कल्याणकारी अधिकारियों और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में उनकी भूमिका के विश्लेषण के जो चित्रण हैं, उसे हम लोगो ने प्रशंसनीय रूप से स्वीकार किया है। परन्तु फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपने पूरे चित्रण में कल्याणकारी रुझान पर ही अत्यधिक आग्रह करते हैं, न कि इस प्रकार के कार्य के सम्बन्ध में जो एक संगठन के रूप में है और समझा बुझाकर तनाव कम करने की भूमिका के लिए है और अपनत्व के वातावरण को बढ़ाने के लिए हैं, किन्तु यह भी एक अपूर्ण भक्ति ही है, जिसके अन्तर्गत काम को बिना स्वाभाविक श्रद्धा के

किया जाय। इसकी असफलता का कारण तो इसकी कल्पना के समय ही बन गया थी, जिसे बड़ी सरलता से पहले से बताया जा सकता है। श्रिमकों के उचित कल्याण के अलावा अन्य किसी भी प्रकार के कार्य की योजना इस अधिकारी के जिम्मे नहीं होनी चाहिए। यह कल्पना कि वह नियोजक का व्यक्ति है, पूर्णत: समाप्त हो जानी चाहिए। वह भगवान का आदमी है और मानवता की अच्छाई के लिए समर्पित है। उद्योग को यह विश्वास होना चाहिए कि औद्योगिक सम्बन्ध के कार्यक्रम के अन्तर्गत सभी के कल्याण हेतु बिना किसी हिचक और संस्कारों से युक्त यह एक ऐसी योजना जो स्वत: से अच्छे परिणाम प्रस्तुत करती है। वस्तुतः ऐसी भूमिका ही उद्योग को एक व्यापक विनाश से बचाएगी। 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'। इस भूमिका को श्रमिक अधिकारी अथवा कल्याण अधिकारी सभी प्रकार के अंकुश से मुक्ति के साथ निभा सकें तो यह एक अच्छा उदाहरण होगा। साथ ही उनकी नियुक्ति और छंटनी केवल मुख्य श्रमायुक्त अथवा किसी बाहरी एजेन्सी की सिफारिस व अनुमोदित करने पर ही की जानी चाहिए। इससे भी अच्छा होगा यदि उनकी नियुक्ति और छटनी एक ऐसे अधिकारी अथवा अधिकृत समिति द्वारा होनी चाहिए, जो स्थायी त्रिदलीय यंत्रणा के आधीन बनायी गयी हो। इस यंत्रणा का उल्लेख 'त्रिदलीय गठन' के अन्तर्गत हमारी याचिका के अध्याय क्र० ६ में किया गया है।

अनुपस्थिति

भारत में उद्योग की कुशलता की अनुपस्थिति एक सबसे बड़ी बीमारी के रूप में मानी जाती है। हड़ताल द्वारा जो कार्य दिवस नष्ट होते हैं, वे सबसे अच्छे गिने गये वर्ष में ३० लाख और सबसे खराब वर्ष में १०० लाख कार्य दिवसों के नष्ट होने के बीच में रहते हैं। (सबसे अच्छा वर्ष १९६३ का था, जिसमें चीनी आक्रमण के कारण सभी श्रमिक आन्दोलन स्वेच्छा से छोड़ दिये गये थे)। परन्तु जो कार्य दिवस अनुपस्थिति के कारण नष्ट हुये हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक है। एक अनुमान के अनुसार ये आकड़े प्रति वर्ष १५० लाख कार्य दिवस से अधिक हैं। इकनामिक टाइम्स के २८ दिसम्बर १९६७ के अपने लेख में श्री एन० बी० खोरे ने १९६०-६५ कार्यकाल की अवधि में भारत के कुछ उद्योगों व केन्द्रों में वार्षिक औसतन अनुपस्थिति के दर के बहुत रोचक आकड़े प्रस्तुत किये हैं। पूरे काल के लिये उनके निकाले गये आकड़े निम्नांकित हैं—

उद्योग	स्थान	वर्ष १९६०-६५ की औसत अनुपस्थिति दर
सूती मिल्ल	बम्बई	१२·७

सूतीमिल	अहमदाबाद	·७·९
,,	शोलापुर	·१६·५
,,	कानपुर	·१६·४
इन्जीनियरिंग	बम्बई	१४.१
,,	पश्चिमी बंगाल	·१३·२
,,	मैसूर	·१२·९
बागान	,,	२०·३
कोयला खदान	सम्पूर्ण भारत	·१३·३

ये आकड़े स्वेच्छा और अनिवार्य रूप से अनुपस्थिति के जोड़ अथवा वार्षिक अवकाश, आकस्मिक अवकाश, रुग्णावकाश आदि के योग को मिलाकर है। परन्तु साप्ताहिक छुट्टियों को नहीं मिलाया गया है। इसलिये इन आंकड़ों को आवश्यक छूट देकर ही अध्ययन करना पड़ेगा, जिस पर भी ये आकड़े बहुत अधिक हैं। उत्पादन पर अनुपस्थिति के प्रभाव के संदर्भ में बताते हुये श्री खोरे ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वर्ष भर में एक प्रतिशत की दर से जो अनुपस्थिति होगी, वह एक ही समय पर भारत के सभी प्रमुख नगरों में सगठित औद्योगिक क्षेत्र द्वारा किये गये ५ अथवा ६ पूर्ण सफल बन्द के बराबर होगी। भिन्न प्रकार की अनुपस्थिति में सबसे उल्लेखनीय रुग्ण अनुपस्थिति अथवा प्रमाणित अनुपस्थिति है। यह कहा जाता है कि राज्य कर्मचारी बीमा योजना के लागू करने के बाद अनुपस्थिति का यह घटना चक्र बढ़ा है। अनुपस्थिति का यह घटना चक्र पर्याप्त मात्रा में व्यापक है और बढ़ते हुये विशाल हृदयता वाली रुग्णता लाभ योजना के कारण यह मनोवृत्ति और भी बढ़ी है तथा ऐसा ही परिणाम इग्लैन्ड, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, अमेरिका और जापान में भी हुआ है। साम्यवादी देश भी यह महसूस कर रहे हैं कि बीमारी की घटनायें बढ़ रही हैं। हंगरी में औसत औद्योगिक श्रमिक बीमारी के कारण वर्ष में १९ दिन से ऊपर काम पर नहीं उपस्थित होता, जब कि जेकोस्लोवाकिया में यह औसत १४·५ दिन है। पाश्चात्य देशों में यह देखा गया है कि अक्सर मनोभूमिका की अस्थिरता छोटी सी बीमारी होने के कारण बढ़ जाती है और काम पर न आने के लिये बाध्य करती है। काम से भगाने की आदत और डाक्टरों द्वारा सरलता से प्रमाणपत्र देना भी एक कारण कहा जा सकता है। यू० के० की इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज में जहां पर एक विशाल हृदयता वाली रुग्णता लाभ योजना पूर्णत: नियोजक के मूल्य पर लागू की जाती है, वहां की केमिकल उद्योग में अनुपस्थिति की दर उच्चतम है। यह ऐसा ही है जैसा होना चाहिये। पाश्चात्य देशों में भी कर्मचारियों की अनुपस्थिति के कारण उत्पादन हानि बहुत व्यापक है। ब्रिटेन की एक रिपोर्ट में इस विषय पर उल्लेख किया गया है कि ब्रिटिश उद्योग में हड़ताल

द्वारा नष्ट हुये दिनों का सम्पूर्ण योग ३० लाख दिवस बनता है, जबकि अनुपस्थिति के कारण यह ३० करोड़ दिवस होता है। एशिया और अफ्रीका में अनुपस्थिति का यह घटना चक्र काफी बड़ा है भारत के औद्योगिक समुदाय में अनुशासन की व्यापक कमी के कारण यह और भी खराब हो गयी है। यह भी कहा जाता है कि भारतीय कारखानों में औसत श्रमिक केवल ४ घंटे प्रतिदिन काम करता है और एक क्लर्क तो बड़ी मुश्किल से ३ घंटे काम में लगता है। एक एस० क्यू० सी० अध्ययन ने सामूहिक हानि को २५ प्रतिशत तक का अनुमान लगाया है और यह भी संकेत किया है कि अत्युत्तम ढंग से प्रबन्ध की गयी औद्योगिक इकाइयों में भी सामूहिक परियोजना की उपयोगिता ४० प्रतिशत से कम है।

औद्योगिक मनोविज्ञान के बहुत से छात्रों और लेखकों ने भी अनुपस्थिति के इस विषय पर ध्यान केन्द्रित किया है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रश्न के सभी प्रकार के निराकरण अभी बहुत दूर ही हैं। कुछ ही दिन पहले दिल्ली की टेक्सटाइल उद्योग में इस संदर्भ पर एक गहनशील शोध किया गया। अधिकृत छुट्टी और अनधिकृत छुट्टी के बीच के अन्तर के बारे में लेखक ने लगातार अनुपस्थित रहने वालों के व्यक्तिगत चरित्र पंजिका ब्योरे का ५ भागों में वर्गीकरण किया है। वे हैं–उद्यमी, सम्माननीय स्थान पाने वाले, विषयासक्त व्यक्तियों, परिवारिक सम्मान वाले तथा बीमार व बूढ़े। पहली दो श्रेणियां उस प्रकार की हैं, जो अत्यधिक गतिविधियां करती हैं। उद्यमी बहुत अधिक विषयों एवं उलझनों में जकड़ा रहता है, जिसके परिणाम स्वरूप कारखाने में होने वाली नित्य अनुपस्थिति की चिन्ता नहीं करता और सम्माननीय स्थान पाने वाले अपने पद के आधार पर अनधिकृत रूप से इसका दुरुपयोग करते हैं। शेष भगोड़े वर्ग के लोग हैं, जिनमें से विषयासक्त व्यक्ति अपने में ही एक वर्ग है। साथ ही पारिवारिक सम्मान वाले अपने ही घर के काम में लगे रहते हैं और बीमार व बूढ़े तो वैसे ही असहाय रहते हैं। फिर भी लेखक ने इन मनोवृत्तियों को ठीक करने के लिए केवल एक ही प्रमुख सुझाव दिया है – वह यह है कि ठीक काम के लिए ठीक व्यक्ति चुना जाना चाहिए। इस चयन कार्य के लिए वह सावधानी पूर्वक चुनाव कार्यक्रम का सुझाव किया है, जो कौशल परीक्षण पर आधारित हो और साथ ही व्यक्ति को काम के अनुसार समुचित समायोजन की सहायता से समझाने बुझाने वाली सेवा के लिए भी उसने सुझाव दिया है। अभी यह देखना शेष है कि किस हद तक यह सुझाव भारतीय वातावरण में व्यावहारिक है और इसकी अनुपस्थिति को कम करने में क्या उपयोगिता है। पर यह एक प्रमुख तथ्य की ओर इंगित करता है कि भारतीय श्रमिक अपनी वर्तमान स्थिति तथा वातावरण से खुश नहीं है और उसे यह वातावरण

रुचिकर नहीं लगता है। कोई भी ऐसा कारण नहीं है कि वह पहले से ही अपने कम वेतनों के एक भाग को गवां बैठे और काम से भागने को पसन्द करे। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना बहुत ही महत्व पूर्ण है कि स्वयं रोजी कमाने वाले क्षेत्र (विश्व-कर्मा सेक्टर) में अनुपस्थिति की वृत्ति बिलकुल नहीं है। पट्टीवाला, रिक्साचालक, टैक्सी ड्राइवर, डब्बा वाला, दूध वाला, मोची, डाक्टर, वकील, राजनीतिक व ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता जैसे वर्ग कभी भी काम से अनुपस्थित नहीं रहते, जब कि श्रमिकों के समान उन्हें अपने काम का विवरण भी नहीं देना पड़ता। अक्सर ये रविवार को भी काम करते हैं और स्वेच्छा पूर्वक देर रात्रि तक भी करते हैं ऐसा ही उदाहरण गृहणियों का है, जो देश की कार्यकर आबादी की आधी जनसंख्या की हैं और वे एक दिन के विश्राम के लिए भी नहीं सोचतीं। काम के प्रति दुर्लक्षता अथवा आलस्यपन पर पूर्वी देशों के लोगों का दृष्टिकोण बतलाना ठीक नहीं होगा। इसमें कोई शक नहीं है कि हमारे यहां मुद्रा सम्बन्धी प्रोत्साहन और औद्योगिक अनुशासन से प्रेरणा लेने के बारे में दूसरे देशों के मुकाबले में अधिक दुर्लक्ष किया जाता हैं, और इसलिए कोई भी बाहरी चिकित्सा एक लम्बी अवधि से अधिक काम करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती, जो केवल मात्र शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ही हो। परन्तु वह काम जो मन और उससे सम्बन्धित हितों को पसन्द है तथा वह काम जिसमें व्यक्ति अपने शरीर और आत्मा को लगा सकता है, भारतीय मस्तिष्क को बहुत अधिक मोहित करने वाला तथा साहस के रूप में प्रकट होने वाला होता है। कार्य के इस प्रकार के नियंत्रण में वह अपने आप की सब चीजों को भूल जाता है और इसी में उसके काम की आदतें बनाने की पूर्ण पद्धति भी निहित है।

मनुष्य मस्तिष्क में निर्माण की प्रवृत्ति सार्वभौम है। इस भीतरी मनोवृत्ति के प्रकटीकरण का सही रूप 'कर्म' है। यह वृत्ति भगवान की दी हुयी प्रवृत्ति है। जब निर्माण की पुकार होती है तो पेड़ में फूल आते हैं। इसी सन्दर्भ में मनुष्य के जन्म के साथ ही कर्म जुड़ा है। इसे 'सहज कर्म' कहते हैं। मनुष्य कर्म के बिना रह नहीं सकता।

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए उसे कर्म करना पड़ता है। शरीर की यात्रा कर्म के बिना असम्भव है। शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्धयेद कर्मणः। इतना नहीं हर एक व्यक्ति के लिए उसके अन्दर भी स्वभाव के अनुकूल काम है। कर्म का प्रकार उसके व्यक्तित्व की विशेषता के अनुसार है और वह अपनी प्रवृत्ति के साथ पैदा हुआ है और उसे वह उस कर्म से स्वाभाविक रूप से बांधता है, जो उसके व्यक्तित्व के बिना ही उससे जुड़ा है। वह एक काम के लिए नियुक्त किया

गया हैं, जिसे अपनी पूर्णता के माध्यम के रूप में उसको मानना होगा। 'स्वभावजेन कर्मेण निबद्धः स्वेन कर्मणा'। जैसा गीता ने कहा है। यह हम सबके लिए है कि हम हर एक व्यक्ति को उसकी प्रवृत्ति के अति अनुकूल काम को पहचानें, जो उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। औद्योगिक परिवार के विवेचन में पहले ही यह अवसर प्राप्त किया है, जिसमें हमने स्वनिर्धारित, स्वप्रशासित सामुदायिक समूह के सामाजिक आर्थिक पद्धति के मौलिक सिद्धान्तों को रखा है। स्वयंशासित–समष्टि। काम के व्यक्तिगत रुचि के प्रश्न के सम्बन्ध में हमें यह समझना और आग्रह करना है कि स्वयं के स्वरूप को प्रकट करने और परिणाम स्वरूप स्व अनुशासित व्यक्तिगत उत्थान 'स्वाधीन व्यष्टि' की प्रक्रिया के बारे में कि वह क्या है और समाज के सर्वसाधारण उद्देश्यों के समकक्ष तरतम रूप के पूर्णतः भाव को भी समझें। वस्तुतः व्यक्ति के जीवन के बारे में बिना सोचे समाज के बारे में सोचना ही असंगत है और फिर भी इस मुक्ति को बुद्धिजीवियों द्वारा अक्सर उपयोग में लायी जाती है। ये बुद्धिजीवी समाज जीवन को सर्वप्रथम सोचते हैं और उसकी गतिविधियों की योजना बनाते हैं और तब निर्धारित ढांचे में नियुक्ति हेतु व्यक्ति को ढूढ़ते हैं। हर एक व्यक्ति को वे पहले से सिले सिलाये कपड़ों में फिट करना चाहते हैं और जब हर नियुक्ति में उपयुक्त व्यक्ति नहीं खोज पाते तब वे दूसरों की और समाज के बारे में शिकायत करते फिरते हैं और राज्य तथा दूसरी एजेन्सियों की सहायता के लिए आह्वान करते हैं, ताकि नियोजित आवश्यकताओं के अनुसार व्यक्ति की प्रवृत्ति को प्रशासित किया जाय। वे काम न करने पर दूसरों पर कड़ी टिप्पणियां करते हैं, जबकि वह काम इन दूसरे व्यक्तियों द्वारा कभी भी अनुमोदित न था। वे यह भूल जाते हैं कि ये अन्य लोग भी उन्हीं के समान मनुष्य मात्र हैं, उनकी भी काम और स्व विवेचना की प्रवृत्तियां हैं। अगर उन्हें अपने मार्ग के अनुसार बढ़ने की अनुमति न दी गयी और उन्हें पूर्ण न करने दिया गया तब उसका परिणाम व्यापक विनाश के लिए अवश्यभावी है। 'परधर्मो भयावहः।" पाश्चात्य प्रकार का औद्योगीकरण विदेशी तन्त्र है। यह अस्तित्व के उन उद्देश्यों और सिद्धान्तों को उत्पन्न करना चाहता है, जो हमारी संस्कृति को बाहरी (विदेशी) लगते हैं और जो हमारे जीवन में सामाजिक और आर्थिक गतिरोध, नैतिकता ह्रास और निष्ठुर समस्यायें पैदा करती हैं। भारतीय श्रमिक की अनुपस्थिति इस विदेशी और निष्ठुर नियन्त्रण के विरुद्ध घोषित शत्रु है। हर एक व्यक्ति की प्रवृत्ति सभी व्यावहारिक दृष्टिकोणों से जीवन की एक सुदृढ़ स्थापित और नियम बद्ध वास्तविकता के लिये है। हर एक बच्चे की स्वाभाविक और प्राकृतिक रुझान और गतिविधियां तथा उसको दी गयी शिक्षा एक प्रकार के मनुष्य का निर्माण करती हैं, जिसकी निर्माण क्षमता एक विशेष प्रकार से उल्लेख करने वाली बनती है। यह उस प्रकार का व्यक्ति बनता है, जिसे

जीवन में अपने उपयुक्त काम चुनने के लिये आमन्त्रित किया जाता है अथवा प्रोत्साहित किया जाता है। सामाजिक व्यवस्था माली का काम करती है, परन्तु उसे बीज की प्रकृति जिसे भगवान ने प्रदत्त की है, को स्वीकार करना पड़ता है। 'स्वभाव नियतं कर्म'। सामूहिक जीवन को व्यक्ति के साथ जोड़ने और उसे प्रस्थापित करने के कार्यकलाप जीवप्राणी के क्रम के साथ बढ़ना चाहिये, जैसे समाज और जैसा एक पेड़ अथवा मनुष्य शरीर ताजे खाद्य पदार्थ और उष्णता से बढ़ता है और जैसी प्राकृतिक विलीनीकरण की प्रक्रिया से प्राकृतिक रूप से उसका उत्थान नये स्वरूप खड़ा करता है, इसी प्रकार हर एक व्यक्ति को सामाजिक जीवन के जीव प्राणी उत्थान में अपनी प्राकृतिक स्थान को इस प्रकार से ढूढ़ना चाहिये, ताकि उसकी प्रवृत्ति निर्माणकारी आत्मा के व्यापक स्वेच्छा से भरपूर हो जाय। यह प्रक्रिया परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन को जीवन प्रदान करता है. दूसरे शब्दों में यदि हम अपने समाज को यन्त्र और पूंजी की नींव पर न बनाना शुरू करें बल्कि मनुष्यों की भिन्न प्रकार की पूंजी और उसकी व्यापक प्रवृत्ति के अनुसार बनायें तो हम देखेंगे कि हर एक व्यक्ति पूरे समाज के लिये बहुत हितकारी है। हर एक मनुष्य जीवन में अपना स्थान ग्रहण करने के लिये निश्चित ही इच्छुक है और हर एक व्यक्ति निर्माणकर्ता है। पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीकी पद्धतियों ने भी प्रशासन में हर एक व्यक्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार की देख-रेख की सर्वोच्च महत्ता की अनुभूति करना शुरू कर दिया है। उन्होंने व्यक्ति उत्थान कार्यक्रम का विकास अब तक कर लिया हैं जो कि हर एक व्यक्ति के विशेष विकास की आवश्यकताओं के भिन्न-भिन्न क्रमों और दिशाओं के अनुसार बैठता है। कार्यकलापों और सत्ता के वितरण की वर्तमान दिशा हमें यह बतलाती है कि वह पद के अनुसार नहीं बांधी जानी चाहिये, बल्कि भिन्न-भिन्न पदों पर रखे व्यक्तियों की क्षमताओं और विशेषताओं के अनुसार समय-समय पर बदलनी चाहिये। यह एक व्यक्ति को अपने व्यवसाय में दिलचस्पी पैदा करने की पूर्व निर्धारित आवश्यकता है, जैसा कि हम पहले ही दिखा चुके हैं कि वास्तव में हर एक मनुष्य को उसके स्वयं निर्धारित उद्देश्य के लिये काम मिलना चाहिये। एक पुराना संस्कृत सुभाषित कहता है—

अमंत्रम् अक्षरं नास्ति। नास्ति मूलमनौषधम्॥
अयोग्यः पुरुषो नास्ति। योजकः तत्र दुर्लभः॥

वस्तुतः कोई भी अनुपयुक्त व्यक्ति नहीं है, बल्कि यह योजना बनाने वाले की गलती है। उसको हर व्यक्ति को उसके उचित स्थान पर रखना चाहिए, जैसे कि 'पर्वत और गिलहरी' शीर्षक के कवि ने लिखा है कि गिलहरी पर्वत से ठीक ही कहती है—"हर एक वस्तु ठीक और बुद्धिमता पूर्वक बनाई गयी है, सबकी प्राकृतिक योग्यता भिन्न भिन्न है, यदि मैं अपनी पीठ पर जंगल नहीं उगा सकती तो

तुम भी एक नारियल तक नहीं फोड़ सकते।" हर एक अपने स्थान में पूर्ण है और कोई भी अपने क्षेत्र में किसी दूसरे को मान नहीं दे सकता। हर एक व्यक्ति की निर्माण कारी स्वेच्छा में विश्वास उसकी स्वेच्छा के प्रगटीकरण के लिए पोषक व उपयुक्त ढ़ाचे के लिए सतत प्रयत्न, हर एक व्यक्ति की कल्याणकारी स्वेच्छा के आधार पर सामाजिक जीवन के व्यापक ढ़ांचे, उसके जीवन और उसके स्व को पूर्ण करने की दिशाओं को इकट्ठा करने आदि ही वास्तविक रूप में वह मार्ग है, जिसके द्वारा अनुपस्थिति की बीमारी को ठीक किया जा सकता है, साथ ही अधिक सकारात्मक रूप से जाति अथवा समाज के हर समय ताजे और यौवनयुक्त जीवन धारा में हर व्यक्ति के उपस्थित रहने की पद्धति की पूर्णता का एक रास्ता प्राप्त हो सकता है।

सामाजिक सुरक्षा

यह एक व्यापक और न समाप्त होने वाला विषय है। भारतीय संविधान इस संदर्भ में एक मौलिक चिन्तन को ही समाविष्ट करता है। संविधान की प्रस्तावना हर एक नागरिक के लिये न्याय-सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तथा हर प्रकार के सामाजिक स्तर, सम्मान और अवसर में समानता को प्राप्त करान के लिये कटिबद्ध है। राजनीति के निदेशक सिद्धान्त प्रस्तुत करते है कि 'राज्य अपनी आर्थिक समताओं और विकास की सीमा में बेरोजगारी, बृद्धावस्था, बीमारी, अपंगावस्था और दूसरी इसी प्रकार की आवश्यकताओं के लिये प्रभावी प्राविधान करेगी।' पहली पंचवर्षीय योजना ने इस तथ्य को माना था कि इन निदेशक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने अथवा गतिविधियों को बदलने के लिये सामाजिक आर्थिक ढांचे को ही इस प्रकार से बदलना होगा ताकि उन आधारभूत स्वेच्छाओं को क्रमशः बिठाने अथवा आत्मसात करने के योग्य हो सके, जैसे-काम करने का अधिकार, उचित आय का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, वृद्धावस्था बीमारी और अपंगता आदि के विरुद्ध बीमा के कदम आदि। पंचवर्षीय योजना यह संकेत करती है कि योजना काल में इम्पलाइज स्टेट इन्सोरेन्स एक्ट और प्राविडेन्ट फण्ड एक्ट के अनोखेपन के कारण प्रशासकीय, वित्तीय और दूसरी कठिनाइयों के कारण कोई भी नये कदम नहीं लेने चाहिये। प्रथम योजना ने अपने उद्देश्यों को पूर्ण किया है। दूसरी योजना ने इन योजनाओं को नये उद्योगों और सदस्यों तक व्यापक करने के लिये सोचा था और प्राविडेन्ट फण्ड के योगदान की दरों को बढ़ाया था तथा यह सिफारिश की थी कि प्राविडेन्ट फण्ड और ई० एस० आई० योजना को समाविष्ट कर एक सामाजिक सुरक्षा की व्यापक पद्धति बनायी जाय। यह एकीकरण अब कार्यान्वित होने वाला है। फिर भी इस संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिये कि प्राविडेन्ट फण्ड और ई० एस० आई० योजना को प्राथमिक कानून के रूप में प्रस्तावित करने के पश्चात दो

और लाभान्वित करने वाली योजनाओं-पेन्शन और ग्रेच्युटी को कानूनी स्तर देना शेष है। इस कानूनी कमी को अब पूरा किया जाना चाहिये। अभी तक सामाजिक सुरक्षा पद्धति संगठित उद्योगो के वेतन भोगियों तक सीमित था, किन्तु तृतीय पंचवर्षीय योजना ने घोषणा की कि क्रमशः राज्य और शहरी और ग्रामीण स्थानीय गठनों को भी इन योजनाओं में जो कि सामाजिक सहायता और सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत हैं, में भाग लेने की आवश्यकता है। इन दिशाओं में तीन प्रकार के लोगों के लिए एक साधारण शुरुआत करने की बात थी। ये वर्ग शारीरिक कमियों वाले, वृद्धजन जो काम नहीं कर सकते और औरतें व बच्चे जो अपनी जीवन निर्वाह और सहायता के माध्यम में पूर्ण नहीं हैं, गिने गये हैं। यह भी प्रस्तावित किया गया था कि ई० एस० आई० योजना उन क्षेत्रों तक बढ़ायी जायगी, जहां पर बीमा जनसंख्या ५०० से १५०० तक के बीच में हो। सरकार ने तृतीय पंचवर्षीय योजना की महत्वाकांक्षी उद्देश्यों की पूर्ति में सराहनीय प्रयत्न किये हैं। वर्तमान काल में त्रिदलीय समिति ने श्री सी० आर० पट्टाभिरमन की अध्यक्षता में ई० एस० आई० योजना का पुनः निरीक्षण किया है। समिति ने सामाजिक सुरक्षा की एकीकृत कार्यक्रम के विका की आवश्यकता पर पुनः बल दिया है। कुछ ही दिन पहले जून, १९६४ में भारत सरकार ने भिन्न-भिन्न सामाजिक सुरक्षा और कल्याणकारी योजनाओं को प्रोत्साहन करने के लिये एक प्रमुख कदम उठाया है, जिसके अन्तर्गत कानून और सामाजिक सुरक्षा के मंत्रालय के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा का एक पृथक विभाग खोला गया है। इस विभाग द्वारा प्रथम वर्षीय रिपोर्ट में घोषणा की गयी है कि सरकार की यह इच्छा है कि सामाजिक सुरक्षा के इस संदर्भ को सुदृढ़ करने के लिए और योजनायें खोजी जानी चाहिये तथा अपनायी जानी चाहिये तथा जहां कहीं सम्भव हो, लाभ के स्तर को बढ़ाना चाहिये, इस संदर्भ में राज्य सरकारों द्वारा चलायी गयीं भिन्न-भिन्न योजनायें—६·५ करोड़ परिगणित जाति तथा ३ करोड़ अनुसूचित जनजाति को केन्द्रित वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए। शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं को न केवल अनुसूचित समुदाय और घुमन्तू कबीले तक ही बढ़ाई गयी बल्कि उन परिवारों, जिनकी वार्षिक आय एक निर्धारित न्यूनतम आय से कम है, दी गयी है। अभी तक पेन्शनर्स को इस योजना में नहीं लिया गया था, परन्तु अक्टूबर, १९६४ में सरकार ने पेन्शन में थोड़ी सी बढ़ोत्तरी कर एक तदर्थ निर्णय करके इस सन्दर्भ में थोड़ी प्राथमिकता दिखाई है। सरकारी कर्मचारियों के लिए प्राविडेन्ट फण्ड की एक दूसरी पद्धति भी पहले से है। एक दशक से वे स्वयं के योगदान के आधार पर स्वास्थ्य सम्बन्धी योजना से भी लाभान्वित हो रहे हैं। पारिवारिक पेन्शन योजना में भी परिवर्तन आया है, जिसके अन्तर्गत कर्मचारी की मृत्यु के बाद उसकी विधवा को जीवन पर्यन्त पेन्शन दी जायगी और उनके नाबालिग

बच्चों को कुछ भत्ता दिया जायगा। सरकारी और निजी विद्यालयों में अध्यापकों के लिये कुछ दिन पहले से त्रिसूत्री योजना लागू की गयी है, जिसके अन्तर्गत पेन्शन और ग्रेच्युटी, योगदान सहित भविष्य निधि और अनिवार्य बीमा योजना है। दिसम्बर, १९६६ से विश्वविद्यालय वित्तीय आयोग ने स्वास्थ्य सेवा योजना प्रारम्भ की है, जिसके अन्तर्गत लगभग १२ लाख छात्र, ७० हजार अध्यापक तथा दूसरे अन्य स्टाफ व उनके परिवार वालों को लाभान्वित होने का अनुमान है। रेलवे ने भी अवकाश प्राप्त कर्मचारियों और उनकी पत्नियों को स्वास्थ्य व चिकित्सा सम्बन्धी सुविधा दी है। संसद ने कुछ ही समय पूर्व एक बेरोजगारी बीमा योजना को पारित किया है, जिसके अन्तर्गत कर्मचारी भविष्य निधि और कोल माइन्स प्राविडेन्ट फण्ड के [illegible] लाख सदस्यों को लाभ होगा। सन् १९५४ से बेरोजगारी बीमा के विषय प[illegible]रकार का ध्यान गया हुआ है, जबकि श्रममंत्रालय के अन्तर्गत एक कार्यकारी समूह (working group) ने औद्योगिक श्रमिकों के लिये एक योजना की सिफारिश की थी, जिसमें हर श्रमिक को एक वर्ष में १३ सप्ताह के लिये लगभग आधे वेतन की दर से धनराशि का लाभ होना चाहिये। ऐसा अनुभव किया जाता है कि इन्जीनियरिंग और टेक्सटाइल उद्योगों में जहां पर लगातार तकनीकी अन्वेषण के कारण कुछ मात्रा में बेरोजगारी होती ही रहती है, उस छटनी के बढ़ोत्तरी में अथवा बन्दी में मुआवजा के स्थान पर बेरोजगारी बीमा योजना का सुझाव अति उत्तम है। ऐसा सुना गया है कि सम्पूर्ण देश के लिये एक उचित नमूने के आधार पर बृद्धावस्था पेन्शन योजना का विकास करना भी सरकार के विचाराधीन हैं। यदि यह योजना व्यवहारिक स्वरूप धारण करती है तो यह भारत सरकार की एक अनोखी उपलब्धि होगी। अभी भी वर्ष १९६६-६७ में सरकार ने अपंग व्यक्तियों और निराश्रित बूढ़े मर्द, औरत व बच्चों की सहायता हेतु वार्षिक बजट में २० लाख रुपये का प्राविधान किया है। ग्रामीण परिवारों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिये एक व्यापक एवं सामूहिक कार्यक्रम बनाया गया है। यह अवश्यमेव प्रशंसनीय है। पुन: आवास मंत्रालय ने अपने स्थान से हटाये गये व्यक्तियों और गर्भवती महिलाओं के लिये निःशुल्क राशन, कपड़े, औषधि, दूध आदि को मुहैय्या किया है। समाज द्वारा बहिष्कृत औरतों, बच्चों, विधवाओं, परित्यक्ता और दुर्लक्षित बच्चों, गूंगों व बहरों के लिये करीब एक सौ स्व प्रेरित संस्थाओं ने अपनी संस्था की ओर से एवं अन्य प्रकार से सेवा प्रदान की है। भिन्न-भिन्न सामाजिक सुरक्षा के कदम, जो कानूनी ढंग से सामाजिक सहायता और वित्तीय भत्ते के रूप में पहले से ही उस सीमा तक दी जा रही है, जिस सीमा तक आर्थिकस्थिति वहन कर सकती है। कर्मचारी राज्य बीमा योजना अब ३१ लाख श्रमिकों को दी जाती हैं। स्वास्थ्य चिकित्सा सम्बन्धी सहायता भिन्न-भिन्न योजनाओं के अन्तर्गत ५ करोड़ १२ लाख लोगों को

दी जाती है। काम (ड्यूटी) पर चोट लगने पर आर्थिक व चिकित्सा सम्बन्धी सहायता ६५ लाख श्रमिकों के लिये स्वीकृत है, जबकि वृद्धावस्था में भिन्न-भिन्न प्राविडेन्ट फण्ड योजनायें एक करोड़ १० लाख लोगों पर लागू होती है। सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं का प्रशासन का अन्ततोगत्वा अधिकार त्रिदलीय गठनों के हाथ में है। यह इस प्रकार का है, जैसा कि उसे होना चाहिये। सामाजिक सुरक्षा का एक व्यापक कार्यक्रम, जिसके अन्तर्गत कर्मचारी राज्य बीमा को प्राविडेन्ट फण्ड योजना में विलीनीकरण करने के लिये है, पहले से ही सोचा जा रहा है। सरकार ने यह घोषणा करके अच्छा किया है कि सभी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा के कदम के एकीकरण को सर्वप्रथम प्राथमिकता दी जायगी, क्योंकि यह भविष्य की प्रगति के लिये एक सुदृढ़ प्रशासकीय और वित्तीय आधार प्रदान कर सकता है। सरकार के घोषित कार्यक्रम के अन्तर्गत पहले से ही निर्धारित निम्नांकित सूची है—इस समय के लिये गये कदमों में गुणात्मक सुधार, जैसे—उचित चिकित्सा और विशेषज्ञों की सेवा का प्राविधान, पुर्नवास का प्राविधान, अपंगों को पुन: काम देने और [illegible] की सेवाओं को बनाये रखने का प्राविधान, छोटे-छोटे कारखानों, दुकान व [illegible]य प्रतिष्ठान, व व्यवसायिक फर्मों को वर्तमान योजनाओं के आधीन लाना, शह[illegible]और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं रोजी वाले और बेरोजगारों को शिक्षा का प्राविधान, [illegible] रोजी वालों को सम्पूर्ण सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं के अन्तर्गत क्रमश: [illegible] करना जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम जोखिमों जैसे कि अपंग होना, वृद्धावस्था व मृत्यु हो जाने पर सुरक्षा प्रदान करना और भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या के लिये राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा की योजना है। यह अवश्यमेव वह पक्ष है, जिसमें सरकार की सुपू[illegible] शक्ति इमानदारी और प्रशंसनीय ढंग से लगायी गयी है और योजना की गयी है। एक मात्र पीड़ित पक्ष, जो इस दीर्घकालीन प्रयत्नों पर एक धब्बे के समान है, वह यह कि कीमतों की लगातार बढ़ोत्तरी के कारण इन योजनाओं का समुचित लाभ दिन प्रतिदिन कम हो रहा है। यह माना जाना चाहिये कि इन योजनाओं के अंतर्गत राष्ट्रीय आय बजट से निर्धारित धन अच्छी लाभान्वित योजनाओं के लिये ठीक ढंग से लगायी जा रही है, यदि यह ऐसा है तो यह सरकार के लिये बहुत कठिन नहीं होनी चाहिये कि वह भिन्न-भिन्न वृद्धावस्था लाभान्वित योजनाओं और पेन्शन को मूल्य सूचकांक से न जोड़े। कुछ ही दिन पहले स्वीडन सरकार की वित्त मन्त्रालय ने एक पुस्तिका वितरित की है, जिसमें यह जानकारी दी गयी है कि किस प्रकार स्वीडिस सरकार प्राविडेन्ट फण्ड, ग्रैच्युटी और पेन्शन आदि योजनाओं को मूल्य सूचकांक से सम्बद्ध करके लागू करने में सफलता पाई है। हम जानते हैं कि अभी-अभी कर्मचारी भविष्य निधि प्रशासन ने भविष्य निधि की पूंजी को लगाने के बारे में कुछ ठोस विचार किया है, परन्तु यदि कुछ ठोस पूंजी लगाने के कार्यक्रमों का लाभ हुआ है, तो अभी तक यह श्रमिकों को प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत होने वाले लाभ, उनके वास्तविक मूल्य को ही व्यापक रूप से बढ़ाते हैं। वस्तुत: यह प्रचुरता तो एक मृगतृष्णा के समान है। सरकार द्वारा आयोजित और क्रियान्वित सही सामाजिक सुरक्षा के आधारभूत कार्यक्रम वस्तुत: प्रशंसनीय हैं। तात्कालिक जो ढांचा है, वह सम्भावित पूर्णता के निकट है, परन्तु इसे अपने आधार और उपयोगिता में अधिक सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है, ताकि दिन प्रतिदिन के प्रशासन को बड़े ध्यान से देख सके, और इसके आधार अर्थात् सहायक पूंजी लगाने वाले ढांचे को सुदृढ़ कर सके। तभी दिये गये वायदों के समतुल्य इन योजनाओं के सही लाभ हो सकेंगे। ०००